ॐ

* समर्पणम् *

श्रीमतां स्वर्गीय भ्रातृवर्याणां

सिद्धान्तवारिधि—

पं० नरसिंह दास जी

इत्येतेषां कर-कमलेषु

सादर समर्पित, आज्ञाकार्यनुज·

माणिकचन्द्र कौन्देय



❀ नमो महावीराय ❀

धर्म-फल-सिद्धान्त

(धर्मश्च फलञ्च सिद्धान्तश्च, धर्मफलसिद्धान्ता:)

लेखक—

स्याद्वाद वारिधि, सिद्धान्त महोदधि, तर्क-रत्न, न्याय दिवाकर, दार्शनिक शिरोमणि, न्यायाचार्य

श्रीमान् प० माणिकचन्द्र जी कौन्देयः

चावली निवासी, सहारनपुर।

प्रकाशक —

अकलङ्कप्रेस, रानी बाजार, सहारनपुर

मिती—कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी,
वीर निर्वाण सं० २४७४

मूल्य-त्रि **स्वाध्यायः**
(तीन वार)

प्रथम निवह
१००० प्रति

* पुस्तक-निष्ठ विषय सूची *

i

सार्वश्रीद्वादशाङ्गाम्बुनिधिसुमथनोत्थभाङ्गमत्न्थतुल्य-
श्रीमत्तत्त्वार्थ—शास्त्राभिलुठनजनितानेकरत्नाप्त्युपज्ञम् ।
सत्याङ्कस्यात्प्रमाणैवकृतिनयनवचः सप्तभङ्गैर्भवेद्वो (ज्ञो)
जित्वैकान्तप्रवादानधिगमजसुदृग् लब्धयेध्यात्मशास्त्रम् ॥

श्रीमान स्वर्गीय परम पूज्य सिद्धान्त वारिधि

पं० नरसिंहदास जी प्रतिष्ठाचार्य का
संक्षिप्त जीवन-परिचय

आगरा नगर (संयुक्तप्रान्त) से ७ कोस दूरी पश्चिम दिशा में 'चावली' एक सुन्दर एवं प्रसिद्ध गांव है इसके चारों ओर १६ उपगांव हैं। इस गांव में एक सुन्दर जिनालय और १६ घर पद्मावती पुरवाल दिगम्बर जैनों के थे (जिनमें से अब कुछ कम हो गये हैं क्योंकि यहां के अनेक परिवार अब भिन्न भिन्न नगरों में रहने लगे हैं) उनमें से एक प्रमुख कुलपति का नाम लाला नन्दराम जी था। ला० नन्दराम जी सौम्यस्वभावी, धर्मनिष्ठ व्यक्ति थे। उनके प्रतापसिंह जी, उमरावसिंह जी, हेतसिंह जी, राजाराम जी ये चार पुत्र हुए। चारों पुत्र कट्टर धार्मिक एवं वीर

थे। ला० राजाराम जी तो अच्छे प्रसिद्ध पहलवान भी थे।
इन चार भाइयों में से उमरावसिंह जी के केवल पुत्रियां हुई।
पुत्र न हुआ अत उनकी वंशपरम्परा आगे न चल सकी। शेष
तीनों भाइयों की वंश-परम्परा अच्छी फूली फली। साथ से थे
लाला मथापसिंह जी के पुत्र रणजोरदास जी पावली में त्यागी
उदासीन वृत्ति से रहते हैं। पच्चीस वर्ष से एकाशन करते हैं।
पांचवी प्रतिमावत पालन करते हैं। इनके चार पुत्र हैं। राजाराम
जी के गुलाबचंदलाल जी आदि चार पुत्र हुये।

तृतीय पुत्र पूज्य पिता जी श्रीमान् ला० हरसिंह जी अपने
समय के एक अच्छे वैद्य, धर्मज्ञ, शास्त्र-व्याख्याता थे थे यद्यपि
संस्कृत भाषा इतनी नहीं जानते थे किन्तु हिन्दी भाषा के अच्छे
विद्वान थे। लाला हेतसिंह जी के चरित्रनायक श्रीमान पं० नर-
सिंहदास जी तथा मैं (न्यायाचार्य प० माणिकचन्द्र) ये दो
सुचरित्र पुत्र हुए। भाईजी श्रीमान प० नरसिंहदास जी का
जन्म वि० सं० १९२६ में हुआ। मेरा जन्म माघ शुक्ला ५ वि०
सं० १९४२ में हुआ। मैं (माणिकचन्द्र) भाई जी से १४ वर्ष
छोटा हूं। पूज्य पण्डित नरसिंहदास जी ने प्रारम्भिक शिक्षा छठी
कक्षा तक अपने गांव की सरकारी पाठशाला में पाई। पिता जी
एक अच्छे शिक्षा प्रेमी व बड़े धर्मात्मा थे, आठ वर्ष की अवस्था
से ही रात्रि-जल का त्याग था अष्टमी, चतुर्दशी, नन्दीश्वर-प
दशलक्षण में सर्वदा जीवन-पर्यंत एकाशन किया उपवास भी
किये। वनस्पतियों में मात्र १७ हरिआया यम था, कमदयम

सप्त-व्यसन का त्याग था पन्द्रह वर्ष की अवस्था से ही चार सीकों का नियम था यदि वे सुपारीभी खाते तो एक शुद्ध स्थान पर बैठकर खाते थे। कुल्ला कर उठते थे वह एक सीक समझी जाती थी, मैंने कभी उनको कफ, खासी, जुकाम, बुखार होते नहीं देखा सतला चञ्चल नीरोग शरीर था, कईवार सम्मेदशिखर, चम्पापुर, पावापुर, गिरिनार जी आदि क्षेत्रों की पैदल वन्दनायें कीं। द्वादशाङ्ग वाणी के प्रचार की अटूट भावना थी, देशान्तरों में भेजी उनकी सैकड़ों विशाल चिट्ठियां और हजारों मौखिक उपदेशों से हम दोनों भाइयों को शुभ शिक्षायें प्राप्त हुईं। वे सन्तोषी अल्पारम्भी सद्‌गृहस्थ थे। उनकी उत्कट इच्छा थी कि उनका पुत्र संस्कृतभाषा का प्रकाण्ड विद्वान् बने। तन्नुसार उन्हों ने पण्डित नरसिंहदास जी को हिन्दी की छठी कक्षा पास कराकर अलीगढ़ की दिगम्बर जैन पाठशाला में संस्कृत पढ़ने के लिये भेजा। यह पाठशाला रानीवाले सेठों की सहायता से श्रीमान् प० छेदालाल जी की देख रेख में चलती थी। (श्रीमान् पं० छेदालालजी तथा स्व० श्रीमान् प० प्यारेलाल जी पाटनी अलीगढ़ ने पद्मावती पुरवालीय विद्वान् श्रीमान् प० छत्रपति जी से शिक्षा प्राप्त की थी प० छत्रपति जी अपने समय के अद्वितीय विद्वान् थे) पं० नरसिंहदास जी अलीगढ़ में प० छेदालाल जी से धर्म-शास्त्र और ब्राह्मण पण्डित जीवाराम जी से संस्कृत व्याकरण, काव्य, साहित्य अध्ययन करते थे।

उस समय पढ़नेके लिये विद्यार्थियों को आज कल सरीखी

छात्रावास (बोर्डिङ्ग हाउस) आदि सुविधाएँ न थीं, अत स्नान पान आदिके अनेक कष्ट उठाकर अलीगढ़से प्रीस कालेज बनारस की संस्कृत प्रथमा-परीक्षा पास की। तत्पश्चात् अलीगढ़ में शिक्षा का प्रबन्ध सन्तोष-जनक न होने के कारण और संस्कृत भाषा के केन्द्र बनारस में अध्ययन की प्रशंसा सुनकर पण्डित नरसिंहदास जी संस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन के लिये काशी चले गये।

बनारस में संस्कृत पढ़ने के लिये उन्हें बहुत बड़ी तपस्या करनी पड़ी। क्योंकि उस समय वहां जैन विद्यार्थियों के पढ़नेके लिये न तो कोई विद्यालय था और न कोई छात्रालय (बोर्डिंग-हाउस)। इसके अतिरिक्त सबसे बड़ी आपत्ति यह थी कि बनारस के ब्राह्मण विद्वान् वेदविरोधी होने से जैनों को अछूत जैसे समझते थे और जैनों को पढ़ाना तो दूर की बात रही उनको पास बिठाने में अपना घर अपवित्र हुआ चिल्लाते थे और उनको छूलेने से स्नान करते थे तथा उनके साथ बात चीत कर लेने पर अपने मुख को अपवित्र हुआ मानते थे।

अत उस समय बनारस में किसी ब्राह्मण विद्वान् से जैन विद्यार्थी अपने वास्तविक रूपमें संस्कृत न पढ़ सकता था तदनुसार श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी, उनके ताऊजात भाई रणछोरदास जी, न्यायदिवाकर स्व० पं० पन्नालाल जी, स्व० पं० गौरीलाल जी, स्व० पं० रामदयालु जी, स्व पं० कलाधर जी ने ब्राह्मण वेश में वैसे नाम रखकर अनेक विपत्तियां सहते हुये संस्कृत भाषा का

अध्ययन किया, जैसे बौद्ध वेप में माननीय श्री अकलङ्क निपकलङ्क ने अध्ययन किया था। तत्कालीन बनारस के प्रख्यात विद्वान् स्व० श्री महामहोपाध्याय तात्या शास्त्री, म० म० प० सीताराम जी शास्त्री, म० म० दामोदर शास्त्री आदि से सिद्धात कौमुदी (मनोरमा), दिनकरी, साहित्य दर्पण, माघ, किरात, नैषध आदि व्याकरण, न्याय, साहित्य के ग्रन्थों का अध्ययन किया। बनारस में कपट ब्राह्मण वेप का कुछ रहस्य खुल जाने का आभास हो जाने पर वहा से भाग कर आप नवद्वीप (नदिया शान्तिपुर) पढने चले गये वहा पर भी ब्राह्मण रूप में पंचलक्षणी, सामान्य निरुक्ति आदि नव्यन्याय का अध्ययन किया। इस प्रकार चरितनायक श्रीमान् पं० नरसिंहदास जी ने बड़ी विपत्तियों, कठिनाइयों को पार करते हुये विद्याध्ययन किया।

अध्ययन समाप्त करके श्रीमान् प० नरसिंहदास जी अजमेर मे श्रीमान् स्व० सेठ मूलचन्द्र जी सोनी के अनुरोध पर पढाने के लिये २०) मासिक पर नियुक्त हुए, वहा पर आपने चारों अनुयोगोंका अच्छा स्वाध्याय किया और स्व० श्रीपण्डित बलदेवदास जी के कादाचित्क सत्सङ्ग से तथा पं० मोहनलालजी के सम्पर्क से अच्छा सैद्धान्तिक-ज्ञान प्राप्त कर लिया। साथ ही विधिकर्म, प्रतिष्ठाकाण्ड के ग्रन्थों का परिशीलन किया।

सं० १९५४ की मथुरा (चौरासी) मे स्थापित हुये महाविद्यालय में द्वितीय अध्यापक होकर २६) रु० मासिक वेतन पर गुरु गोपालदास जी के विशेषाग्रह से पढ़ाने चले आये। मथुरा मे

आपसे मैंने (लघु भ्राता पं० माणिकचन्द्र) पं० लालाराम जी मैनपुरी पं० रामप्रसाद जी बम्बई, स्व० पं० मनोहरलाल जी पाढ़म पं० दामोदरलाल जी गुरई, पं० अमोलकचन्द जी उड़ेसर, पं० मक्खनलाल जी देहली, प० सोनपाल जी सरनऊ, स्व० पं० हीरालाल जी, पण्डित मुन्ननलाल जी कामा आदि विद्वानों ने शिक्षा प्राप्त की। उस समय मेरी आयु ११ वर्ष थी। उन दिनों न्याय वाचस्पति, स्व० श्रीमान पं० गोपालदास जी बरैया तथा पं० धन्नालालजी आदि ने एक पण्डित सभा स्थापित की थी उसके आप मन्त्री थे अनेक प्रश्नों के उत्तर देते थे। पद्मावतीपुरवाल सभा के भी आप मन्त्री रहे। श्रीमान् सेठ नेमीचन्द जी टीकमचंद जी अजमेर के साग्रह आह्वान पर सं० १९६१ में पण्डित जी पुन अजमेर पढ़ाने के लिये चले गये, जैन पाठशाला में अनेक छात्रों को पढ़ाया। उन दिनों श्रीमान स्व० सेठ कल्याणमल जी इन्दौर ने उज्जैनमें पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा कराई उसके प्रतिष्ठाचार्य श्रीमान पण्डित नरसिंहदास जी थे प्रतिष्ठा आपने ऐसे सुन्दर-विधान के साथ की कि समस्त आगतुक व्यक्ति उससे बहुत सन्तुष्ट और प्रसन्न हुए मैं भी उज्जैन गया था। स० १९६४ में सम्मेदशिखरपर जो सिवनी निवासी स्व० श्रीमन्त सेठ पूरणसाह जी ने प्रतिष्ठा कराई थी उसके प्रतिष्ठाचार्यभी आप थे। बुन्देलखण्ड में भी कई प्रतिष्ठायें आपने कराई थीं।

अजमेर में स्वर्गीय पं० बनारसीदास जी आदि को पढ़ाया पण्डित जी को हजारों श्लोक कण्ठस्थ थे। अजमेर में कोई अधिक

काम नहीं था अत दिनरात शास्त्र-व्यालोडन करते रहते थे।

इस वर्ष पण्डित जी के ऊपर महान् दुःख का प्रकरण उपस्थित हो गया। महान् परोपकारी स्नेह-वारिधि पूज्य पिता जी का चावली में स्वर्गवास हो गया। ससार में सभी माता, पिता अपने पुत्रों से स्नेह करते हैं, किन्तु यह पिता लोकातिक्रान्त विलक्षण स्नेह करने वाले थे, वे प्राचीन दिगम्बर आचार्यों के महान् ग्रन्थों का अध्ययन, अध्यापन, कर स्वपर कल्याण करना, यश उपार्जन करना, धार्मिक आचरण करना कराना यह सत्पुत्र का कर्तव्य समझते थे। सदा शुभ भावों को अपण करते रहते थे, उन दिनों अपने प्राण-प्रिय लड़कोंको कौन बङ्गाल बनारस भेजता था, किन्तु उन्हों ने ठोस पुत्र-स्नेह यही समझा कि यह लड़का उच्चकोटि का विद्वान् बनकर जिनागम की प्रभावना करे। उन्हों ने अपने तन मन धन को पुत्र शिक्षामें लगा दिया था। तभी तो ऐसी निकृष्ट परिस्थितियों में पण्डित जी को प्रशस्त विद्वान् बना सके थे।

पूज्य पिता जी ने तीनों काल में हम दोना से गृहस्थ सम्बन्धी कुछ भी काम कराने की इच्छा नहीं रक्खी। एक लोटा पानी भी नहीं खिंचवाया। सब कार्य अपने हाथ करते थे। कभी एक पैसा कमाने की या कमाई लेने की स्वप्न मे भी वाछा नहीं की, कमाकर कुछ रुपये दिये भी तो उन्हों ने उपेक्षा भाव रक्खा, लिये नहीं। इन कार्यों में फस जाने से वे ज्ञानोपाजन में विघ्न होना अनुभव करते थे। स्वय अच्छा उपाजन कर लेते थे।

पूजन-पाठ का बहुत उत्साह था। श्रीसमन्तभद्राचार्य कुन्दकुन्द, नेमिचन्द्र सिद्धान्त-चक्रवर्ती अकलङ्कदेव आदि महर्षियों के गम्भीर ग्रन्थों में छिपे हुये द्वादशाङ्ग-वाङमय के प्रचारकी तीव्र भावनायें सवदा उनके हृदय में अटूट भरी रहती थीं। दशलक्ष जाते समय भाईजी की सूत की कठोर करधौनी में रुपयों के अतिरिक्त छोटे लत्तामें छिपाकर दो तोला सोना बाध दिया करते थे कि कष्ट अवसर पर सोना बेच कर अध्ययन करते रहना पूज्य पिता जी के गुणों का स्मरण कर अब भी आंखें साश्रु हो जाती हैं आयुष्य के अन्तिम निषेकों पर किसी का वश नहीं।

पूज्य पिता जी का स्वर्गवास होने के पश्चात् पण्डित जी ने अजमेर की नौकरी छोड़कर चावली में ही रहने का विचार किया लेन-देन गहना रखने का व्यापार बढ़ा लिया यों इन दिनों डेढ़सौ रुपये मासिक की आय हो जाती थी, पं० जी किसी आसामी को सताते नहीं थे। उनके व्यवहार से सर्व ग्रामवासी प्रसन्न थे। कुछ चालाक आदमियों ने पण्डित जी की सरलता अनुसार धोखा दिया, यों दस हजार रुपया मारा गया। पण्डित जी सन्तोषी थे आनन्द के साथ छब्बीस वर्ष चावली मे रहे। विक्रम सम्वत् १६८८ में पण्डितजी को इष्ट-वियोग का दुख सहना पड़ा। प्रसव अवस्था में पक्षाघात हो जाने से तीसरी पत्नी का भी वियोग हो गया।

त्यागी पुरुष तो धन कलत्र आदि का त्याग कर ही देते हैं तभी वे उत्कृष्ट व्रतों का पालन कर पाते हैं। किन्तु सज्जन

सद्गृहस्थके लिये इस युगमे न्यायोपार्जित धन, और पूर्वविवाहित धर्मपत्नी का होना आवश्यक है। वृद्ध अवस्था मे वैयावृत्य, सद्व्यय, तीर्थ-यात्रा, परोपकार, मुनिदान आदि मे इन्हीं दो का सहारा है। धर्म-पत्नी का अभाव गृहस्थ अवस्था मे खटकने की बात है। "गृहिणीं गृहमित्याहु"

पण्डित जी के चार पुत्र हैं। बड़ा पुत्र नमिचन्द्र चावली में काम करता है। नमि के पाच पुत्र और दो लड़किया है। दूसरा पुत्र ताराचन्द्र दरजे (मथुरा) औषधालय मे वैद्य है इसके पाच लड़के और दो लड़किया हैं। तीसरा लड़का हेमचन्द्र सर सेठ भागचन्द्र जी महोदय के पास अजमेर मे रहता है, इसके दो पुत्र और दो पुत्रिया हैं। चौथा पुत्र सुमतिचन्द्र आगरेमें ऐम०, ए० ऐल० टी० की परीक्षा देरहा है, इसका विवाह हो चुका है। पण्डित जी की लड़की जारखी व्याही है।

सरसेठ भागचन्द्र जी महोदय ने पं० जी को कुल-क्रमागत वात्सल्यानुसार बड़े सन्मान और आग्रह के साथ सौ रु० मासिक वेतन पर पुन अजमेर बुला लिया और अपने रङ्ग-महल में ठहराया। कोई विशेष कार्य नहीं दिया, सेठानी और सेठ जीको पं० जी पढाते थे। पण्डितजन स्वाध्याय, अध्ययन अध्यापन के अतिरिक्त और व्यापार कर ही क्या सकते हैं?

सरसेठ भागचन्द्र जी ने छोटी ही अवस्था मे अनेक गुण प्राप्त कर लिये हैं। इनको कुटुम्ब-परम्परा से विद्वत्स्नेह है। पञ्जाबवासी प० मथुरादास जी, जयपुरवासी पं० सदासुख जी, प०

धन्नालाल जी गोधा, पं० बलदेवदास जी, पं० गोपालदास जी, प० बनारसीदास जी आदि गृहीय-विद्वान् के रूप में सेठ जी के पूर्ववर्तियों के यहां रह चुके हैं।

अब भी सरसेठ भागचन्द्र जी को जाप, पूजन, स्वाध्याय ध्यान, विद्वत्समागम का अधिक उत्साह रहता है। भाद्रपद में रत्नत्रय व्रत करते हुये उनकी सौम्यमूर्ति, दर्शनीय अनुकरणीय हो जाती है। पाच दिन तक नंगे पाव रहते हैं। मन्दिर जी को नंगे पैर जाते हैं। प्रासाद, हवेली, सवारी, भूषण आदि का त्यागकर केवल जिन-मन्दिर या शहर से बाहर छोटी सी कोठरी मे विविक्त रहते हैं। अन्य भी धनिकोचित अनेक गुण हैं। राज राष्ट्र जनता में अनिन्द्य उपकारों द्वारा अत्यधिक मान्यता बढ़ा ली है। मिलन प्रकृति है। धन, भोग, कुटुम्ब, इन्द्रिय-विषय आदि में अत्यासक्ति नहीं है धर्माचरण से परिणाम अनुस्यूत रहते हैं। सम्यक्त्व के सभी अङ्गों को पालते हैं।

पण्डित जी ने इनने कतिपय श्रावकाचारों का अध्ययन किया। उन्हीं दिनों पण्डितजी के ऊपर पुन दु ख प्रकरण आया दो पुत्र, एक पुत्री, छह पौत्रों और चौदह प्रपौत्रों मे रहते हुये भी चावली मे माता जी का अट्ठासी वर्ष की अवस्था में स्वर्गवास हो गया। ये माताजी भी गम्भीर धर्मात्मा, गृहव्यवस्था-दक्ष थीं, अनेकव्रत, उपवास, रस-त्याग, तीर्थ-यात्रायें की थीं। रात्रि जल का त्याग तो सात वर्ष की उम्र से ही था, भोली, सौम्य, सरल प्रकृति थी, अस्सी कुटुम्बी जीव उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करते

थे। कईवार सम्मेदशिखर आदि तीर्थोंकी यात्रा की, उद्यापन भी किये। दोनों समय दर्शन, जाप्य, का नियम था। समाधि मरण के दिन भी जिन-दर्शन किये। सभी कुटुम्बी उनकी आज्ञा पालते थे। धन कुटुम्बियों में उनका तीव्रराग नहीं था। सदा परिणाम अच्छे रहते थे। माता जी के स्वर्गारोहण से दोनों पुत्रों को शोक हुआ। ऐसे शुभ-भावों पूर्ण आशीर्वाद देने वाली आत्माओं की न्यूनता है। "जगदस्थिरम्"।

पण्डित जी सदा से ही धर्म-सेवन करते रहे। प्रतिदिन पञ्च-स्तोत्रों का पाठ, जाप्य, ध्यान, जिनार्चा, स्वाध्याय का नियम उनका जीवन भर निभ गया था। सम्मेदशिखर जी, गिरनारजी चम्पापुर, पावापुर, शत्रुञ्जय आदि क्षेत्रों की वन्दनायें की थीं। तथा अन्य कुटुम्बीजनों को तीर्थ-यात्रा धर्मसेवन में लगाये रहते थे, सन्तान को उचित शिक्षा-सम्पन्न सदाचारी बनाया। पण्डित जी ने चावलीमें एक छोटा सा औषधालय खोल रखा था। बिना मूल्य औषधिया बाटा करते थे। बच्चों की बीमारी को शीघ्र दूर कर देते थे। दो दो चार चार कोस के रुग्ण बच्चे लाये जाया करते थे। पण्डित जी की चिकित्सा से वे आरोग्य पाते थे, कितने ही गरीबों पर व्याज छोड़ देते थे।

सेठ पद्मचन्द्र जी आदि के सादर बुलाने पर पण्डित जी तीन चार बार दशलक्षण-पर्व में आगरा गये। शास्त्र प्रवचन किया। आगरे वालों ने प्रसन्न होकर पण्डित जी को "सिद्धांत-वारिधि" पदवी से सुशोभित किया। पण्डित जी को समझाने

था प्रथम बड़ा अच्छा आता था। कठिनातिकठिन जैनसिद्धान्त के प्रमेयों को युक्ति तथा उदाहरणों द्वारा गले उतार देने में वे बड़े सिद्धहस्त थे। मन्दमति श्रोताओं को भी बड़ी कुशलता से समझा देते थे। चूंकि पण्डित जी पूजन, पाठ, प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, द्रव्यानुयोग, कर्मकाण्ड, व्याकरण, न्याय, प्रतिष्ठा विधान मन्त्र-शास्त्र के प्रकाण्ड ज्ञाता थे। अत उनके प्रसाद गुणमय सुश्राव्य शब्दों या प्रश्नोत्तरों को सुनकर श्रोताजन आनन्द से गद्गद हो जाते थे। सभी विषयों के बहुशास्त्रज्ञ थे। मुख से शब्द निकलते ही प्रश्नकर्त्ता के अभिप्राय को जान लेते थे। पण्डितजी की विद्वत्ता गम्भीर थी। दर्शन और चारित्र भी प्रशस्त थे।

सौम्य स्मित लाल तेजस्वी मुख था, दन्तावलि, नेत्रज्योति शरीरकान्ति ठीक थी। अर्थोपार्जन में सत्य अचौर्य निष्कपटता से व्यवहार करते थे। द्रव्य खर्च करना रुचता था। कौटुम्बिक प्रतिष्ठा बढ़ाई। स्वकीय पद्मावती पुरवाल जाति में तो प्रतिष्ठा थी ही किन्तु अन्य खण्डेलवाल, अग्रवाल, परवार आदि प्रशस्त जातियों में भी पण्डित जी का बहुत आदर था। सरसेठ हुकमचंद जी, सेठ टीकमचन्द्र जी, सरसेठ भागचन्द्र जी सोनी, सेठ गम्भीरमल जी, सेठ पद्मचन्द्रजी आदि श्रीमान् तथा विद्वद्वर्य प० गोपाल दास जी, पं० धन्नालाल जी, पं० पन्नालालजी न्याय दिवाकर, पं० पन्नालाल जी गोधा आदि विद्वान् तथा त्यागीवर्ग सभी सामोद उच्च आसन प्रदान करते थे।

पूज्य भाई जी को मुझ पर अनुपम प्रेम था। अध्ययन

अध्यापन काल में मुझे निराकुल रक्खा। सभी लड़के लड़कियों के विवाह अपने हाथ से किये। पिता के समान उन्हों ने मेरा लालन-पालन किया। उनके प्रेम-व्यवहार का स्मरण कर मेरे नेत्र आर्द्र हो जाते हैं। मै भी यथोचित उनकी भक्ति, विनय सन्मान सेवा करने मे अपना परम सौभाग्य समझता रहा हूं। जनता कहती थी कि इन दोनो मे राम-लक्ष्मण के समान अकृत्रिमस्नेह है। वस्तुत. मैं उनकी पर्याप्तसेवा न कर सका इसका मुझे अनुताप है। मैंने तथा बहू बेटों लड़के लड़कियों चचेरे भाई आदि सभी कुटुम्बिजनों ने उनकी आज्ञा को शिरोधार्य किया। साठ कुटुम्बीजन एक सूत्र मे बन्धे हुये हैं। सबके सूत्रधार पूज्य भाई जी थे।

पण्डित जी का भोजन, वसन, व्यवहार पवित्र था। सेव्य विषयों मे भी अनेक पदार्थों की आखड़िया ले रक्खीं थीं। घर का पिसा आटा खाते थे, नल का पानी कभी नहीं पिया, डाक्टरी हकीमी दवा का सेवन नहीं किया। वैद्य या हकीम से औषधि का पर्चा लिखवा लेते थे, घर मे शुद्ध औषधि बना कर खाते थे। दस वर्ष की अवस्था से ही बाजार की मिठाई खाने का त्याग था कभी जौनार मे भोजन नही किया घर की जौनार या बरातमे भी उनके लिये कच्ची रोटी अलग बनती थी। उन के वस्त्र कभी नहीं पहिने। त्यागियों की सी वृत्ति थी। दस वर्ष से तो अत्युदासीन परिणाम हो गये थे। अकषायभाव, अहिंसा, शान्ति बहुत बढ़ा ली थी। ऐसे उद्भट विद्वान् सच्चरित्र महान् पुरुषके

गुणों का प्रतिपादन करना हमारी लघु मनीषा और लोह लेखनीके शक्य नहीं है।

अजमेरमें सेठ भागचन्द्रजी महोदयने पण्डितजीको निरा कुल सिरमाथे रखा। यों सरसेठ जी के पण्डित जी सद्गुरुवत् पढ़ते थे। आयुष्यकर्म के अन्तिम निषेक स्वरूप यमराज को किसी पर दयाभाव नहीं है। आठ दिन प्रथम पण्डित जी को ज्वर का आवेश हुआ अनेक वैद्योंने यही कहा कि यह घातक ज्वर है। पण्डित जी बराबर आत्म-चिन्तन में मन को लगाये रहे। हेमचन्द्र ने चिकित्सा, परिचर्या, धर्म-श्रवण कराया। महान् दु:ख के साथ कहना पड़ता है कि कार्तिक सुदी १३ सम्वत् २००१ को दिन के बारह बजे नमस्कार मन्त्र का चिन्तन करते हुये पूज्य भाई जी स्वर्गवासी हो गये। उपस्थित कुटुम्बियों और नगरवासी जैन-बन्धुओं को महान् दु:ख हुआ, जोरसे रोने लगे। सरसेठ जी प्रात: काल से ही निर्जल उनकी परिचर्या में पं० जी के पास विराजे हुये थे। अनेक उपचार किये सब व्यर्थ गये। उस समय सेठ जी भी रुदन करने लगे। दैव-व्यवस्था पर किसी का वश नहीं चलता है। सेठ जी ने अपने मान्य गुरुजी की कन्धी में चरणों की ओर लगकर शव-यात्रा की। यों जैन-समाज का उपकारी सूर्य सैंकड़ों हजारों जनों [illegible] कर अस्त हो गया।

"यमाय[illegible]

रक्खा। मैं उनकी सेवा कुछ भी नहीं कर सका। वे मेरे सहोदर ज्येष्ठ भ्राता तो थे ही, साथ ही गुरु जी भी थे। अत स्वीय महान् उपकारों से प्रेरित होकर गुणस्मरणार्थ उनके कर कमलो मे इस छोटी सी पुस्तक को समर्पण करता हूं।

भयाक्रान्तक्लेश—भयोपशान्त्यै।



श्रीमान् प्रातःस्मरणीय सिद्धान्तवारिधि
पू० प०नरसिंहदासजी "प्रतिष्ठाचार्य"

सका। मैं उनकी सेवा कुछ भी नहीं कर सका। वे मेरे सहोदर ज्येष्ठ भ्राता तो थे ही, साथ ही गुरु जी भी थे। अत: सद्भाव महान उपकारों से प्रेरित होकर गुणस्मरणार्थ उनके कर कमलों में इस छोटी सी पुस्तक को समर्पण करता हूं।

भूपाङ्गनक्लेश—भयोपशान्त्यै।
शान्तिर्जिनो मे भगवान् शरण्य:।

मापेक्षमक्षेन्द्रिय—हृदयदयोपेक्षमक्ष्णोति साक्षात्,
क्षेत्रस्थभावावधि नियतपदार्थांश्च विश्वानभीक्ष्णम्।
पक्षे मंक्षु पूर्वाध्ययनपटुसमाकाङ्क्षणीय क्षमाढ्य,
यक्षिन्यधर्मोपक्षितविषयविख्यातये स्ता मुमुक्षो ॥

(श्लोक० टीका)



प्राक्कथन

श्रीवीरोत्थाङ्गपूर्वप्रभृतिकमनघं मन्त्रमुच्चार्य धर्म-
शुक्लध्यानात्मिका या मतिमनधिमनःपर्ययौ चावहन्त्य।
शब्दाद्यर्थाङ्गपूर्णा गृहिजनयतयो भावयन्तु प्रमत्त्या,
पायाज्जीवादितत्त्वाद्यधिगतिकुशला सार्हती भारती नः ॥

इस दुःखादुःखपूर्ण संसार में मङ्गल, लोकोत्तम धर्मसेवन ही जीव का शांति-सुखद शरण है। वैसे तो इस पञ्चमकाल में सभी प्राणियों का जीवन सदा सङ्कटमय है। किन्तु इन तीस वर्षों में तो अचिन्तित असम्भावित कष्ट झेलने पड़े हैं। उनमें भी इन पांच-सात वर्षों में या वर्तमान अब्द में तो महर्घता, मारकाट, छुराबाजी, बलात्कार, धनापहरण, बालक विनाश, स्वस्थानत्याग धर्म-भ्रष्टता, अग्निदाह, आर्त्त रौद्र परिणाम आदि नारकीय यातनाओं ने भारी सता रखा है। राजा, प्रजा, धनिक, निर्धन, पण्डित, मूर्ख सभी भय-ग्रस्त हैं। ऐसे उपसर्ग समयों में आचार्योंने सल्लेखनान्त धर्म-पालन ही आवश्यक उपाय बताया है। घोर विघ्नों का उचित कारणों से प्रतीकार किया जाय कहां तक करोगे। फिर भी जन्म, जरा, मृत्यु, इष्ट-वियोग, अनिष्ट संयोग

आदि व्यथायें अपरिहार्य यों त्रिकाल त्रिलोक मे हित यह धर्म ही शरण्य है।

वैसे तो देव-शास्त्र गुरु ही सब के महोपकारक हैं। फिर भी इस पर्याय मे जैनधर्मोपयोगी ज्ञान प्राप्त कराने मे मेरे नि-स्वार्थ उपकारी पूज्य भाई सिद्धात-महोदधि पं० नरसिंहदास जी और स्याद्वाद वारिधि, न्यायवाचस्पति प० गोपालदास जी वरैया गुरु हैं। यों माननीय प० अम्बादास जी शास्त्री प्रभृति अजैन विद्वानोंसे भी अध्ययन किया है। मैं उन सबका कृतज्ञोपकृत हू।

आर्हत धर्म शास्त्रों की पढाई का प्रकरण बडे भाग्य से मिलता है। ज्ञान को पहिलों से लेना और पिछलों को बाट देना यह गुरुपर्व क्रम सदा से चला आ रहा है विद्वान् का यह भी परम कर्तव्य है।

पाच ज्ञानोंमे चार ज्ञान तो निज के लिये ही हैं। हा श्रुत तो बहुभाग ज्ञानात्मक अपने लिये और अल्पभाग शब्दात्मक पर के लिये भी माना है। तदनुसार मैंने "जैनधर्मसिद्धात" इस पुस्तक को लिख डाला है। कतिपय श्रावकों की प्रेरणा भी थी। इसके प्रमेय सब सर्वज्ञोपज्ञ आगम के हैं मेरी गाठ का कुछ नहीं, अन्वेषकों को शास्त्रोंमे सब मिल जायगे थोड़ा यत्न करना पडेगा।

इस पुस्तक मे धर्म क्या है ? धर्म पालने का मुख्य फल क्या है ? तथा ध्यातव्य सिद्धात क्या है ? इनका परामर्श हुआ है। युक्तियों, उदाहरणो और आगम वाक्यों से प्रतिपाद्य को समझाने का शक्तिभर प्रयत्न किया है। श्री समन्तभद्रादि गुरुजी

तो सर्वदा मस्तक पर और मन में विराजमान हैं हीं, तथा ऐद-
पर्यायिक गुरुद्वय भी।

श्रीमान् माननीय स्वर्गीय दोना गुरुओं के मन्तव्य परोक्ष देना है। सी में सी नम्बर तो विरले ही आते हैं। विस्मरण वश त्रुटियां रह जाना सम्भव है। किन्हीं की भ्रान्तियां स्यात् दूसरी तीसरी बार स्वाध्याय करने से ठीक हो जाय। या मुझसे साक्षात् चर्चा कर लेवें, फिर भी बहुश्रुत विज्ञ लोग शुद्ध कर सकते हैं। "नह्यस्ति सर्ववित्"। हम सब को ज्ञानमद हातव्य है।

पुस्तक को पढ़ने वालेभी नवीन सा ज्ञेय समझ कर त्वरित क्षोभ न करें, किन्तु गम्भीर परामर्श करें। इस पुस्तकमें सब जैन दर्शनकी ही पक्रियायें हैं। हां वादे अनवादे यत्किंचित् परुषभाषा का प्रयोग हो गया है। इसे किसी महान् दार्शनिक या स्तोता की पद्धति का अनुकरण-पाश कहिये, या मदीय व्यक्तित्व की धृष्टता ही मान लीजिये। यह जीव स्वदोषों से ही पराधीन है।

चालीस वर्षों से उपद्रवी, अनुपद्रव, पचासों छात्रों के पढ़ाने का जरठ कार्य करते रहने से कुछ ऐसा टेव सी पड़ गई है तथा जैन सभाओं के नाना प्रकृतिक श्रोताओं के शङ्का समाधान या तत्त्वचर्चा से भी ऐसी आदतें घर कर लेती हैं। व्यवहारकाल प्रभावक है। इस ही कारण आप शब्द के स्थान पर अनेक स्थलों पर तुम, तुमने, तुम्हारे आदि कठोर या प्रिय सम्बोधन-वाचक शब्दों का प्रयोग हो गया है।

सहनशील अध्येता उस पर लक्ष्य नहीं देवें। अन्तरङ्ग

कोई भर्त्सना या कषायभाव नहीं हैं। अरति करने का कोई कारण भी नहीं है। मात्र समझने समझाने का सदभिप्राय है।

पठितृजन ! आप मेरी स्पष्टोक्ति पर कुपित न होवें "स्पष्ट वक्ता न वञ्चक"। गुरु कहते हैं कि 'ठगें नहीं निर्भय स्पष्ट कह देवे।' मन और वचन की एकविषयता अच्छी है सबको इसेही अपनाना है। ग्रन्थों का परिशीलन करने वालों के निज के कुछ अनुभव होते ही हैं। अर्थात् सर्वज्ञोक्त तत्त्व को युक्ति, निदर्शनों द्वारा व्युत्पादन करने की प्रक्रिया सब की विभिन्न प्रकार है। "मुण्डे मुण्डे मतिर्भिन्ना"। तत्त्व व्यवस्था में नहीं किन्तु प्रतिपादन सरणि में कुछ वक्ता को स्वातन्त्र्य भी प्राप्त है। पुस्तक छपाई में कुछ गलतियां रह गई हैं। शुद्धि सूचना-पत्र अनुसार पहिले पुस्तक को शुद्ध कर पुन पुस्तकाध्ययन करें। गुरुजी कहते थे कि कि 'अशुद्ध पुस्तकं शत्रु' यह आपका नितान्त आवश्यक कर्तव्य है।

मेरे हार्दिक स्नेहवत्सल बन्धुओ ! आप मुझे अपना ही समझ हसनीरक्षीरन्याय सदृश प्रवृत्ति अनुसार लेखस्थ वीरशासन को अपना कर स्वपर कल्याण करें ऐसी पावन भावना है। जैनशासनं जीयात्।

स्वर्गीय पूज्य भाई जी के उपकारों से रोमरोमाग्र कृतज्ञ हो रहा मैं इस उपहार को उनके करकञ्जों में समर्पण करता हूं। "रागद्वेष रहित जैन-धर्म बढ़े रहो"

चतुरस्र घनाकारालोकस्थ गो विलोकयन् ।
हस्तामलकवल्लोकं श्री सुपार्श्वं श्रियं क्रियात् ।

माणिकचन्द्र कौन्देय' (न्यायाचार्य)
चावली निवासी सहारनपुर वास्तव्य
कार्तिक शुक्ला दशमी, वीरनिर्वाण सम्वत् २४७४
पता—जम्बूदास जी का छत्ता, सहारनपुर ।

नितान्त आवश्यक निवेदन

अशुद्धि शुद्धि सूचना—पत्रम्



पठनशील भ्रातृवरा —कई स्थलों पर अक्षम्य अशुद्धियां छप गयीं हैं अत कृपया सब से प्रथम शुद्धि सूचना पत्र अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर लीजियेगा। पश्चात् स्वाध्याय प्रारम्भ कर दीजियेगा।

जीवन-परिचय

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
नौत्नभाडमरय थ	नौभ्रत्यभाड्मथ	१	१
महिणी	गृहिणी	६	५

धर्मफल-सिद्धान्त

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
का	के	४	४	हाय	होय	६	८
विमले	विमल	७	११	सममद	समप्रमद	७	१२
विभूतियां का होना	विभूतियोंका चिरकालतक होना	८	१०				
मात्त	मोक्ष	८	१३	भगवान	भगवान्	८	१६
कम	कर्म	६	१०	भागेन	भोगने	६	१०
जा	जो	१०	१८	घध	वध	१०	२०
हा	हो	१०	२०	श्राताश्रा	श्रोताश्रो	११	१०
थाडा	थोडा	११	१२	जैन	जिन	१४	५
विहार	मुनिविहार	१४	७	का	को	१५	४
अग्नि में लेकर	लेकर अग्नि मे	१५	५				
सुदरशन	सुकौशल	१७	७	निठुर	निष्ठुर	१६	१४
धम	धर्म	२१	१६	सकगी	सकेगी	२२	२
जिसका	जिसको	२२	११	आनदोदगम	आनन्दोद्गम	२२	१२
हाता	होता	२२	१२	उपद्रुत	उपद्रवित	२३	२०
इसमे	किंतु इसमे	२४	१०	जा	जो	२४	१२
हा	हो	२४	२०	करा	करो	२५	८
छापे	छाये	२६	१	लट्ट	लटट्ट	२७	२
हीं	ह्रीं	२६	१	हीं	ह्रीं	२६	२
निर्निमुक्त	विनिर्मुक्त	२६	५				

चतुरस्र घनाकारालोकस्थ गो विलोकयन् ।
हस्तामलकवल्लोक श्री सुपार्श्वं श्रियं क्रियात् ।

माणिकचन्द्र कौन्देय· (न्यायाचार्य)
चावली निवासी सहारनपुर वास्तव्य
कार्तिक शुक्ला दशमी, वीरनिर्वाण सम्वत् २४७
पता—जम्बूदास जी का छत्ता, सहारनपुर।

नितान्त आवश्यक निवेदन

अशुद्धि शुद्धि सूचना—पत्रम्



पठनशील भ्रातृवरा—कई स्थलों पर असाम्य अशुद्धियां छप गयीं हैं अतः कृपया सब से प्रथम शुद्धि सूचना पत्र अनुसार पुस्तक को शुद्ध कर लीजियेगा। पश्चात् स्वाध्याय प्रारम्भ कर दीजियेगा।

जीवन-परिचय

अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
नौलभाडमरय थ	नौलत्यभाड्मथ	१	१
महिणी	गृहिणी	१	५

धर्मफल-सिद्धान्त

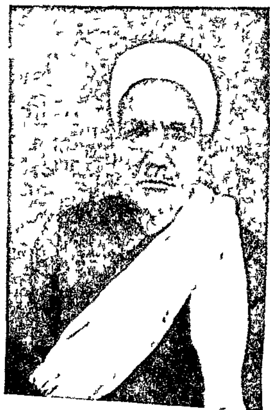
अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्धि	शुद्धि	पृष्ठ	पंक्ति
का	के	४	४	हाय	होय	६	८
विमले	विमल	७	११	सममह	सममम्मह	७	१२
विभूतियों का होना	विभूतियोंका चिरकालतक होना	८	१०				
मास	मोक्ष	८	१३	भगवान	भगवान्	८	१६
कम	कर्म	६	१०	भागेन	भोगने	६	१०
जा	जो	१०	१८	वध	वध	१०	२०
हा	हो	१०	२०	श्राताश्रा	श्रोताश्रो	११	१०
थाड़ा	थोड़ा	११	१२	जैन	जिन	१४	५
विहार	मुनिविहार	१४	७	का	को	१५	४
अग्नि मे लेकर	लेकर अग्नि मे	१५	५				
सुदरान	सुगौराल	१७	७	निठुर	निष्ठुर	१६	१४
धम	धर्म	२१	१६	सकगी	सकेगी	२२	२
जिसका	जिसको	२२	११	आन दोदगम	आनन्दोद्गम	२२	१०
हाता	होता	२२	१२	उपद्रत	उपद्रवित	२३	२०
इसमें	किंतु इसमें	२४	१०	जो	जो	२४	१२
हा	हो	२४	२०	करा	करो	२५	८
छापे	छाये	२६	१	लट्ट	लट्टू	२७	२
ह्री	ह्रीं	२६	१	ह्री	ह्रीं	२६	२
निर्निमुक्त	विनिर्मुक्त	२६	५				

सम्राट सम्राट ३२ ७ सस्कार सस्कार ३३ १
या रत्न रत्न वा ३६ ३ याग योग ३७
मत्र मन्त्र ३७ १६ कोटर कोटी कोटाकोटी ५४
बैठा बैठो ५६ ११ का की ५८ ५
का को ५६ ६ पटकारोंकी पट्कारको ६१
सक्ती सक्तोचुको ६१
पूर्ण श्रद्धा न रख तीव्र चारित्रमोह वश ६१
है है ? ६२ १० तिर्यंच तियञ्च ६५
ते कोई, देते कोई सज्जीव ६६
निश्चित निश्चित ६७ १ अयथा अपना ६८
कठार कठोर ६८ १८ स्वसवेद्य स्वसवेद्य ७४ ८
जैमी जैनी ७७ ११ इन नहीं पहिले अण पुन
इर् प्रत्यय करने पर तद्धितात से तद्धितोत्पत्ति कठिन
विधि है। फिर स्त्रीलिंग मे जैनिनी बनेगा। ७८ १३
बलदेव वसुदेव ७६ १५ ता तो ७६ १६
ससान समान ८३ १२ चौदश आदिको अधिक धर्म
पालो मुनि अतिथि हैं। श्रावक सतिथि हैं। ८५ ५
मद मद यत्नकर ८७ ४ "मणिपीलीणो हु अपम-
त्तो' गो॰ ८७ ६
सनेग सवेग ८७ १२ है हैं ८६ ६
महापाध्याय महामहोपध्याय ८६ १४
विपरध विपर्यय ८६ १४ पायानाना, पायेनाते ६० ५

नमित्तिक	नैमित्तिक	९०	६	जाता	जाता है	९०	१७
वर्लैन	वर्लिन	९१	२	करा	कर	९४	११
स्वसवेद्य	स्वसंवेद्य	९४	१५	नि काक्षा	नि कांक्षा	९६	१८
देना	देता	९६	२१	मर्यादा	मर्यादानाह्य	९७	२१
चलित	चलितरस	९८	१	ता	तो	१००	१८
वासना	वासनाओं	१०१	५	उलझने	उलझाने	१०१	८
विनाद	विनोद	१०१	१२	माक्ष	मोक्ष	१०४	६
देहली से	देहली	१०४	१७	कुछ	कुछ	१०६	१७
स्यात	स्यात्	१०७	२	काग्य	काम्य	१०७	१०
पापात्यंच	पायात्यच	१०७	१८	का	को	१०७	२१
चन्द्रचार्य	चन्द्राचार्य	१०८	४	को	के	१०८	२१
वनट	वजट	१११	१६	कलो	कालो	११४	७
घाडा	घोड़ा	११५	१५	कितने	कितनी	११७	१०
रानी	रानिया	११८	७	न्यास	नाश		
कपास	नारियल	१२१	५	त्याना	त्यानो	१२२	१४
कल्पवृक्ष चाहे जो कुछ पदार्थ दे देते तो दस जातिया क्यों मानीं गयीं ?		१२२	८	श्रत	श्रुत	१२३	१२
पूजन	पूनन	१२५	१२	स्वाधाय	स्वाध्याय	१२६	१६
को	को	१३१	१६	आकारकों	आवारकों	१३१	२०
माक्षार्थ	मोक्षार्थ	१३२	१५	ला	लो	१३२	१७
पुनद्ग	पुद्गल	१३५	१६	अवै	आवै	१४१	१०
यहा	यहा	१४५	१०	सो	ही	१४५	१७

इनसे अवाय धारणा स्मरण ज्ञान है। १८८ १८
सम समय १५० ८ आंत आर्त्तं १५१ २
पाजुस्या पालुन्या १५१ ५ कार्योत्याद कार्योत्पाद १५१ ८
धिपावि धिपवि १५२ १३ अटाइस अट्ठाईस १५३ ३
सस्कृत सस्कृत १५३ १४ यय यर्थ १५३ २०
तत्व तत्त्व १५५ ३ पश्चात पश्चात् १५६ १६
शरीरिक शारीरिक १५८ १६ शुद्धयर्थ शुद्ध्यर्थ १६२ १६
बाहर पर बाहर अङ्ग पर पड़ १६२ १६
ता तो १६३ १७ नही है इा मल मूत्र जीवों के
योनिस्थान शीघ्र बन जाते है, अत अस्पृश्य है अशुद्ध है। १६३ १९
जली जाती १६८ ७ प्रमुक प्रासुक १६४ ८
अत एव +++ १६६ १० पचेन्द्रिय पचेंद्रिय १६६ २०
अहरियमाण आहरियमाण १६७ २
का को १६७ ८ ह है १६७ ११
अव शेष अवशेष १६७ २१ करते करता १६९ २१
आदिका आदिको १७३ १४ अरवोंका अरवों १७४ ११
विकत्रयों विकलत्रयों १७८ १९ माना मानो १७८ १४
अनुप्रक्षा अनुप्रेक्षा १८० २१ कम कर्म १८१ १७
वग वग १८८ ६ दखिता है दीखता है १८८ ९
जिणिदा जिणिंदो १९५ १५ का को १९९ १६
शुध्धा शुध्य २०३ ८ पान्सु पादस्सु २०४ ३

धर्म-फलसिद्धांत



इस पुस्तक के लेखक—
श्रीमान् सिद्धांत-महोदधि, तर्करत्न, न्यायाचार्य
पं० माणिकचन्द्र जी, सहारनपुर।

धर्मसेवन का प्रधान फल



कषाययोद्धृमोहारि-सम्राज निजघान-य ।
रत्नत्रयायुधै पार्श्वे स मे पापानि कृन्ततु ॥

धर्मतत्व का रहस्य जानने के प्रथम धर्म का लक्षण समझ लेना अत्यावश्यक है। आचार्यों का प्ररूपण है कि :—

"धम्मो वत्थुसहावो खमादिभावेण परिणदो धम्मो ।
रयणत्तयाणि धम्मो जीवाणं रक्खणं धम्मो ॥"

अर्थात् जिस किसी जीव, पुद्गल, धर्म द्रव्य आदि वस्तु का जो परानपेक्ष स्वाभाविक परिणमन है वह धर्म

है। अथवा आत्मा की उत्तमक्षमा, मार्दव आदि शुद्ध परिणतियां धर्म हैं एवं सम्यग्दर्शन ज्ञान, चारित्रमय स्वकीय आत्मस्वरूप की प्राप्ति हो जाना धर्म है। तथैव अन्य जीवों की दया पालना भी व्यावहारिक धर्म है।

श्री समन्तभद्राचार्य ने—

"संसार दुःखत सत्वान् यो धरत्युत्तमे सुखे"

सांसारिक दुःखों से हटाकर जीवों को उत्तम सुख स्वरूप मोक्ष में धर देने वाले परिणाम को धर्म कहा है।

हां! न्याय शास्त्र में सुख को देने वाले या विघ्नों को दूर करने वाले आत्मीय गुण को धर्म माना है। कोई दार्शनिक स्वर्ग और मोक्ष के सम्पादक भावों को धर्म बताते हैं। ब्रह्माद्वैतवादी एवं विशिष्टाद्वैतवादी, ज्ञानाद्वैतवादी पण्डित तो अपनी निजात्म सत्ता का मटियामेट हो जाना ही धर्म पालन का चरम फल मान बैठे हैं। कर्मकाण्डी मीमांसक विद्वान् विधि लिङन्त वाक्यों द्वारा स्वर्गप्रद यागादि कर्म करने में ही धर्म कर्म की सफलता स्वीकार करते हैं। अन्य यवन, ईसाई, पौराणिक जन तो 'इष्टदेव की भक्ति या विश्वास करते रहना ही उत्कृष्ट धर्म है' यों अङ्गीकार करते हैं। कोई २ तो ऊबकर यों कह बैठते हैं कि—

'धर्मस्य तत्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पंथा'

धर्म का रहस्य तो अंधेरे मे छिपा है बडे मनुष्य जिस मार्ग पर चल चुके हैं वही धर्म पथ है।

इन सब की मण्डन-खण्डनात्मक पर्यालोचना करना इस लेख का उद्देश्य नहीं है। किन्तु इस कार्य को स्वाधिकार से मनसा कर चुकने पर युक्ति, प्रमाण और अनुभव से जो धर्म और उसका फल परीक्षित हुआ उसका निर्णय करना है।

इस दु समय चराचर जगत् मे बहुभाग प्राणी दु खित दृष्टिगोचर हो रहे हैं। ये अपने मिथ्यादर्शन, ज्ञान, चारित्रो करके उपार्जित किये गये क्लेशो से छूटना भी चाहते हैं, किन्तु विवेक न होने के कारण पुन उसी परिक्लेश के दलदल मे फस जाते हैं। यह दु:ख परम्परा अनादि से ससारी जीवों को सता रही है। इन दु:खों से छुटाने का जो अव्यर्थ कारण होगा वही वस्तुतः धर्म शब्द का वाच्य हो सकता है। यह सिद्धात सभी दार्शनिको की सर्व सम्मति से अभीष्ट हो जाता है। अत जीवों को ठोस हित की प्राप्ति और निकृष्ट अहित का परिहार कराने वाले धर्म का अन्वेषण करना आवश्यक है।

हेतुवाद आगम और स्वानुभव से जितना प्रमेयसमुद्र मे गम्भीर प्रवेश करते हैं वहा तह पर पहुच कर हमको यही धर्म का रहस्य मिलता है कि जो "तत्कालीन अलौ-

जिक आत्मीय आनन्द का सम्पादक होता हुआ भविष्य में भी अभ्युदय या निःश्रेयस का साधक होय" अर्थात् उस समय भी स्वसंवेद्य सुख स्वरूप होता हुआ जो कर्मों का संवर और निर्जरा का जनक होय। प्रवचनसार की "चारित्तं खलु धम्मो, धम्मेण परिणदप्पा अप्पा जदि सुद्ध सपयोग जुदो, पावदि णिव्वाण सुहं" इत्यादि गाथाओं से भी धर्म का निचोड़ यही निकलता है।

जिज्ञासु भ्राताओ! संसारी जीवों के अनेक कर्मों का बंध हो रहा है। धर्म या पुरुषार्थ से उन पौद्गलिक दुष्कर्मों का नाश कर दिया जाता है। मुमुक्षु का यही प्रयास है। इन सूक्ष्म कर्मों को सिद्ध करने के लिये अवश्य नहीं है। तकदीर, मुकद्दर, भाग्य, धर्म, अधर्म, सभी मानने पड़ते हैं। अतः धर्म का सिद्धांत लक्षण यह निर्णीत हो जाता है कि 'जो पीछे सुख का सम्पादक होय या न होय तथा पश्चात् संवर निर्जरा को भले ही करे किन्तु वर्तमान में धर्म पालन के क्षण में अवश्य ही शुद्धि द्वारा आत्मीय अतीन्द्रिय आल्हाद स्वरूप होता हुआ बद्ध और बध्यमान कर्मों की निर्जरा तथा भविष्य में बंधनेवाले वत्स्यमान कर्मों का संवर कर देवे वह धर्म है।

तत्वों का श्रद्धान करना विशेषरूपेण आत्मा के शुद्ध द्रव्य, गुण पर्यायों की प्रतीति करना सम्यग्दर्शन है

वस्तु को अन्यूनानतिरिक्त तथा सर्वज्ञोक्त जिनवाणी का स्वाध्याय कर हेय, उपादेय पदार्थों को वैसा ही ठीक ठीक ज्ञान कर लेना सम्यग्ज्ञान है। वहिर्भूत पदार्थों मे आसक्ति नहीं कर उन पर पदार्थों का त्याग करते हुए सहज आत्म स्वरूप मे रमण करना सम्यक्चारित्र है। धर्म से शुद्ध स्वरूप की प्राप्ति, आत्मा मे बन्धे हुये पुद्गल निमित कर्मों का संवर और निर्जरा हो जाना धर्म पालने का प्रधान फल है। तभी तो श्री समन्तभद्राचार्य ने रत्नकरण्ड-श्रावकाचार मे—

"सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदु"

यानी-सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को ही धर्म माना है। यत्याचार ग्रन्थों मे तो पद पद पर धर्म का उक्त लक्षण पुष्ट किया गया है।

भोगभूमित्व, चक्रवतिपन, इन्द्र, अहमिन्द्र हो जाना धनाढ्य बन जाना इत्यादिक लौकिक ऐन्द्रियिक सुखो को तो धर्म का फल मानना निदान या सुखानुबंध नामक दोष बताया है। अष्टाग सम्यग्दर्शन को पालने वाला चतुर्थ गुणस्थानवर्ती जीव ही जब कर्मपरवश, सात, दुःख-मिश्रित, पापबीज ऐसे लौकिक सुख मे आस्था नहीं रखता है तो भला पाचवें गुणस्थानवर्ती श्रावक, आर्यिका और छठे, सातवें आदि गुणस्थानवर्ती संयमी मुनियों की बात

त्यजेत्तान्यपि सम्प्राप्य परमं पदमात्मनः ॥८४॥

अभिप्राय यह है कि निर्दोषसप्तमीव्रत, सुगन्धदशमीव्र नन्दीश्वर पूजा विधान, रविव्रत, जीवदया, मुनिदा सराग संयम आदि परिणतियों करके पुण्यास्रव होता है किन्तु मोक्षार्थी को अव्रतों के समान व्रतों का भी परित्या करना पड़ेगा। धर्म पालने में आनुषङ्गिक मिल रहे पुण्याधीन लौकिक सुख तो एक प्रकार के विघ्न हैं तेरहवें गुणस्थान में तीर्थङ्कर प्रकृति का उदय हो जाने प असंख्य इन्द्रों से पूज्य हो रहे जिनेन्द्र भगवान के प्राति हार्य, समवसरण आदि विभूतियों का होना भी समा बन्धन का कारण है सर्वोत्तम मार्ग तो ये ही था कि—

तीर्थङ्कर प्रकृति, उच्चगोत्र, मनुष्यायु आदि पुण्य-कर्मों का भी शीघ्र नाश होकर जल्दी से जल्दी मोक्ष की प्राप्ति हो जाती। हा! भव्य जीवों के भाग्य अथवा धर्म तीर्थ प्रणयन, असंख्य जीवों को सम्यक्त्व लाभ हो ये अन्य जीवों के इष्ट प्रयोजन हैं किन्तु तीर्थङ्कर भगवान तो संसार शृङ्खला में अधिक ठहरे रहने से टोटे में ही रहते हैं। गोम्मटसार कर्मकांड में तीर्थङ्कर प्रकृति का उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध ऊंचे संक्लेश परिणामों से होता बताया है—

"सव्वट्ठिदीण मुक्कस्सओ" गाथा १३४।

आजकल पञ्चमकाल में मोक्ष नहीं होती है कैसा ही

धर्म सेवन करो राग भाव छूटता नहीं है। वर्तमानके त्यागी उदासीन श्रावक या मुनि महाराज यदि सम्यग्दृष्टि हैं तो ये स्वर्ग में ही जावेंगे। एक भवतारी लौकान्तिक देव होना तो बहुत कठिन है। वहां स्वर्गोंमें उन्हें नाच गाना बजाना सैरसपाटा करना, देवदर्शन, प्रतिक्षण शृङ्गार में डूबे रहना, देवियों के साथ भोग विलास, इन्द्र द्वारा मान अपमान की प्राप्ति, इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, ईर्ष्या आदि रागद्वेप-मय भावों में असख्याते वर्षों तक निमग्न होना पड़ेगा। उन परिणतियोंसे पुन कर्मबंध होगा। यों न जाने जिन-दृष्ट कबतक यह कर्म बंध और फल भोगने की परम्परा चलती रहेगी। हां तीव्र आत्म विशुद्धि की भावना और पुरुषार्थ करने वाले भाव मुनियों को पुण्य, पाप से शीघ्र छुट्टी मिल जावेगी। कुछ कम अर्द्ध पुद्‌गल परिवर्तन-काल में तो मोक्ष हो ही जावेगी। एक बात यह भी लक्ष्य में रखना कि उपशम श्रेणी का भी उत्कृष्ट अन्तर कतिपय अन्तर्मुहूर्तों से न्यून अर्द्ध पुद्‌गल परिवर्तन काल माना गया है। इसमें अनन्तभव हो जाते हैं। सिद्धांत यह निकलता है, कि धर्म पालने का लक्ष्य इन्द्रिय-जन्य लौकिक सुखों की प्राप्ति करना नहीं है। बीच में कोई आनुषङ्गिक बिना-चाही बला आ पड़े तो हम क्या करें? परवश हमें वह इल्लत भी अस्वरस से भोगनी पड़ेगी। श्री

वचनसार में लिखा है कि—

"नहि मण्णदि जो एवं णत्थि विसेसोत्ति पुण्णपावाणं।
हिण्डदि घोरं मपारं संसारं मोह सछण्णो॥" ॥७७॥

भावार्थ—सोने या लोहे की सांकलों के समान जो पुण्य और पाप में अन्तर मान रहा है, वह मोहाक्रांत जीव घोर दुःखमय अपार संसार में भूल रहा है। वस्तुतः पुण्य पाप दोनों समानतया दुःखस्वरूप हैं। मुझे यह बतलाना है कि संसारी जीवों ने धर्म का फल जो पुण्यबंध समझ रक्खा है, यह ठीक नहीं है, धर्मसेवन का पुण्यबंध के साथ अव्यभिचारी कार्य कारणभाव नहीं है। अन्वय व्यभिचार आवे या व्यतिरेक व्यभिचार आवे यह आपत्ति तो पद पद पर है। किन्तु हमें तो यह सिद्ध करना है कि जिनोक्त धर्म पालने से मात्र तत्काल अलौकिक आनन्द प्राप्ति और कर्म संवर तथा निर्जरा हो जाती है। वस्तुतः यही धर्म की कसौटी है।

खबरदार! इसके अतिरिक्त किसी पुत्र, धन, यश, आरोग्य आदि की प्राप्ति पर लक्ष्य नहीं रखना। अन्यथा भारी टोटा भुगतना पड़ेगा जो कि दुःखमय अनन्तानन्त संसार का कारण होगा। यदि जिन पूजन से कुछ पुण्यबंध भी हो जाय यह फल की आशा कुछ थोड़ी ही है। मात्र पुण्यमात्र पर मस्त मत हो जाओ।

द्रव्यानुयोग, करणानुयोग को नहीं समझ कर भोली जनता कह देती है कि सीता जी ने धर्म का फल बहुत बढ़िया पाया। "अग्निकुण्ड जलमय हो गया। सुदर्शन सेठ के लिये ब्रह्मचर्य पालने से शूली का देव विमान बन गया। चौदस को हिंसा नहीं करने वाला चांडाल गम्भीर सरोवर में डाल दिया गया भी मणिमय सिंहासन पर देवों से पूजित हुआ।"

ऐसा प्रथमानुयोग में लिखा है।

इन कथानकोंकी कतिपय व्याख्याता रोचक हाव, भाव-भङ्गी से सुनाकर सुनने वाले श्रोता, श्रोत्रियों में करुणारस प्रवाहित कर देते हैं, स्वयं भी मुग्ध हो जाते हैं किन्तु आप पाठक थोड़ा न्याय शास्त्र के नियमित कार्य कारण भाव पर लक्ष्य डालिये। मैं तो कहता हूँ कि इन लोगों पर यो विघ्न ही क्यों आये? "पहिले कीचड़ में पैर रखना पीछे स्वच्छ पानी से पग धोना" ऐसा व्यर्थ व्यापार ठलुआ लोगों को ही रुचता है।

आपके विचारानुसार हम कहते हैं कि पहले पाप का उदय आया तो बलवत्तर विघ्न उपस्थित हुआ किन्तु पुनः पुण्य का उदय हो जाने पर वह दूर हो गया। यह कार्य कारण भाव कुछ अंशों में यदि मान भी लिया जाय तो आप उन प्रकरणों के लिये क्या उत्तर सोचेंगे?

जबकि दण्डकवनमें पाचसौ ५०० मुनि घानीमें पेल दिये गये थे, अकम्पनादि उपसृष्ट मुनियोंकी श्रावरी कथा प्रसिद्ध ही है अथवा गजकुमार या पार्श्वनाथ भगवान पर भी घोरतम कष्ट पड़े थे। पाण्डवों को अत्युष्ण लोहकील या तप्त आभूषणों से पीडित किया था। गुरुदत्त मुनि को उपसर्ग हुआ था वे उपसर्ग सहकर भी झटिति मोक्ष को गये। सीता से भी पाच सौ गुने धर्मात्मा शीलवती अनेक घोर तपस्वियों का दु सह या असह्य उपसर्गों करके कदली घात मरण हुआ है। प्रत्येक तीर्थङ्कर के बारे म दस दस मुनि घोर उपसर्गों को सहन कर मोक्ष प्राप्त करते हैं। द्वादशाग रचना में इसके लिये एक न्यारा ही अन्तकृद्दशाग नाम का आठवां अङ्ग शास्त्र है इनके भावों की पूर्वा शुद्धि से मोक्ष ही होती है। इसी प्रकार दारुण उपसर्गों को जीत कर अनुत्तरों में पैदा होने वाले मुनियों का वर्णन अनुत्तरोपपादिक नौवें अङ्ग म गूथा गया है। इसमें उन उपसर्गों का और उस समय के निर्मल परिणामों का विशद वर्णन है। स्वयं विचारो तो सही कि यदि अग्नि म सीता जी जल मरतीं, समाधिमरण पूर्वक भस्म हो जातीं तो समन्तभद्राचार्य जी के धर्म-लक्षणानुसार सीता जी को क्या टोटा पड़ता? तब भी वे स्वर्ग म ही जातीं। अग्नि का पानी बनाकर देवों द्वारा रक्षा हो जाने की दशा में

कर्मों का तीव्र एवर और निर्जरा हो जाने से वंचित रह जाने के कारण उलटा सीता जी को भारी घाटा ही उठाना पड़ा। मर जाना कोई अपराध या पाप तो नहीं।

अग्नि परीक्षा के समय खिलाड़ी देखने वालों में बहुत से ऐसे पोगा लोग भी बैठे थे जो कि सीता जी के जल जाने पर उनको असती कहने के लिये तैय्यार थे किन्तु साथ ही ऐसे विचारशील विद्वानों की भी वहां पर कमी न थी जो कि विघ्न पड़ने पर मृत्यु हो जाने की अवस्था में भी अक्षुण्ण धर्म पालना ही रही समझते थे। नीति शास्त्र में हजारों मूर्खों से एक पण्डित को अच्छा माना गया है। कथानक पद्मपुराण जी मे यों लिखा है—

दो देव कहीं केवलज्ञानी के दर्शन को जा रहे थे, मार्ग में, उन्हों ने अयोध्या के निकट सीता जी की अग्नि परीक्षा का प्रकरण देखा, ऐसी दशा में एक देव ने अपने मित्र से कहा कि सखे! तुम इस अवसर पर कुछ चमत्कार दिखा देना, बस इसी वार्तालापानुसार उस देव ने किसी समुद्र से पानी लाकर वहा डाल दिया। देखो तो सही, स्तोताओं ने कितनी छोटी बात पर इतना सङ्गीन मामला खड़ा कर लिया है।

यदि देव वहा होकर नहीं निकलते तो सीता का अग्निदाह हो जाना अनिवार्य था। ...

आजकल भी और प्रथम भी सैकड़ो वर्षों से विधर्मियों द्वारा मूर्ति खंडन, मन्दिर ध्वंस, शास्त्र दाह, जैनधर्मात्म पीड़न आदि कुकर्तव्य हो रहे हैं। तीर्थ स्थान छीने जा रहे हैं। जैन सम्मेलन, प्रतिष्ठायें, उत्सव रोक दिये जाते हैं। "न गच्छेत् जैन मन्दिरम्।" ऐसे असत्य अपवाद लगाये जाते हैं, जैन धर्म छोड़ने के लिये बाध्य किया जाता है, विहार रोका जाता है। यदि इनका किसी शक्तिशाली द्वारा निराकरण नहीं कराया जाता है तो क्या धर्म का त्याग कर दें? कभी नहीं।

विद्वानों को विचारना चाहिये कि तब भी अब भी और आगे भी ठोस व्रतियों, ब्रह्मचारियों पर अनेक विघ्न आते रहे हैं और आवेंगे। असंख्य जीव विघ्नों से सताये हुये मर गये हैं किन्तु उनकी धर्म पालना का फल तत्काल अलौकिक आनन्द और कर्म निर्जरा हो चुकी थी हो रही है और होवेगी। जैनों का कार्य कारण भाव बहा डटा हुआ है। मर्मज्ञ त्यागी विद्वान् इस रहस्य पर शीघ्र हाथ मार देंगे। बावदूकों की न्यारी बात है।

प्रत्युत सीता जी और सुदर्शन सेठ के ... म लोगों में यह भ्रम फैल गया कि जो ... अग्नि परीक्षा मे उत्तीर्ण न होंगे ... ल अनेक स्त्री पुरुष ब्रह्मचर्य

तीन लाख मन लकड़ी के ज्वल्यमान कुण्ड में तो क्या दस सेर लकड़ी की आग में भी कूद पड़ने की परीक्षा दे सकेंगे ? और यदि वे उसमें झुलस गये तो क्या आप उन को व्यभिचारी ही कहते रहोगे ? अथवा कोई व्यभिचारी, लुच्चा विशेष औषधि लपेट कर या चन्द्रकांत मणि अग्नि में लेकर कूदकर नहीं जले तो क्या उसे ब्रह्मचारी का फतवा दे दोगे ? शीघ्र बोलो न ? सीता को हरते समय रावण ने शरीर न छूकर नहीं सहासी या दासी द्वारा सीता को विमान में नहीं बैठा लिया था किन्तु हाथों से ही पकड़ा होगा, दसों बार राग-युक्त बात भी कही होगी, इसी भित्ति पर धोबी-चमारों ने अपवाद फैला दिया।

विचार शील भाइयो ! शील के सम्पूर्ण भेद और प्रभेदों का पालन तो चौदहवें गुणस्थान में ही होता है। तेरहवें में भी कुछ त्रुटि रह जाती होगी इस तत्व को साक्षात् मिलकर समझ लेना। ब्रह्मचर्य के अठारह हजार भेदों में से गृहस्थ सीता ने मात्र २७ या ८१ इक्यासी भेद पाले होंगे किन्तु इससे भी अधिक शील भेदों को पालने वाले श्रावक और मुनिराज विघ्नरण अपमृत्यु को प्राप्त हो चुके हैं। प्रथमानुयोग इसका साक्षी है। अतः धर्म की अव्यर्थ कसौटी लौकिक यश या विभूतियां मिल जाना कथमपि नहीं है। परीक्षापिशाची-ग्रसितों को सम्भल जाना चाहिये

हा, एक बात और है कि हिंसा, झूठ, चोरी में प्रमत्तयोगात् पद लगता है, व्यभिचार में नहीं। इस बात को न समझो तो जाने दो।

कुछ वर्ष पहिले की बात है कि अजमेर में ढढ्ढा-सेठों का घराना है। सेठानी जी मोतियो की मूल्यवान नथ को उतार कर नाइन से बाल कढ़वा रही थी इनका लाड़ला बकरी का बच्चा यहा वहा खेल कूद रहा था। बाल बधवा चुकने के चार घण्टे बाद नथ की याद आई, नाइन के अतिरिक्त वहां कोई भी मनुष्य था ही नहीं। शङ्कावश, नाइन को घर से बुलवाया गया, धमकाया गया, किन्तु भोली नाइन चोरी करने का निषेध करती गई। अन्त मे नाइन ने कहा यदि मैं ने नथ चुराई होय तो मेरा इकलौता लडका पाच दिन मे मर जावे, दैवयोग से नापिता का लड़का भी मर गया तब तो सब को यही निश्चय हुआ कि नथ इसी ने चुराई है। आठ दिन बाद वह बकरी का बच्चा भी मर गया। खाल उधेड़ने वाले चमार ने टूटी, पिची तथा मसली हुई नथ लाकर सेठानी को दी कि सेठानी जी! न जाने यह क्या चीज है? ये लो, मेमने की आंतों में यह फसी हुई मिली है इसी कारण बकरी का बच्चा मर गया था। परीक्षा देखने के लोलुपी इस दृष्टान्त से कुछ शिक्षा लेवें।

धर्म बन्धुओ ! अक्षुण्ण ब्रह्मचारी सुकुमाल (सुकुमार) या सुकौशल को शृगाली और व्याघ्री भक्षण करती रही। यहा तक कि उनका मरण भी हो गया। वहां क्या रक्षक देव ठलुआ काम करने (घास चरने) चले गये थे ? या सीता सुदर्शन के समान इनके पास पुण्यकर्म बंधा हुआ नहीं था ? हम तो पुन: यही कहते हैं कि धर्म पालन का सच्चा फल सुदर्शन और सुकुमाल को हीमिला यदि कोई क्रीडासक्त देव इनकी रक्षा कर देते तो ये उपशम श्रेणीमपाये जा रहे शुक्लध्यान की रक्षा न कर पाते और न एक भवावतारी सर्वार्थसिद्धि के देव हो जाने का सौभाग्य प्राप्त कर सकते थे। इन दो मुनियो ने घोरतम उपसर्ग के उपस्थित हो जाने पर अपने पुरुषार्थ द्वारा अतीन्द्रिय आनन्दानुभव करते हुये अनन्त कर्मों की झटिति निर्जरा कर डाली थी। उपसर्ग निवारण हो जाने की अपेक्षा उपसर्ग सहन का पदस्थ बहुत ऊंचा है। बडी कमाई होती है।

तीन पाडवों की शीघ्र मुक्ति विघ्न सहने से ही हुई। यदि युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन मुनिवरों की किसी के द्वारा रक्षा कर दी जाती तो वे और भी दीर्घ काल तक ससारी बने रहते। परीषह सहन करने में भीतरी चिदानन्द रस अधिक प्राप्त होता है। गज कुमार मुनि की रक्षा नहीं हुई

तो क्या हुआ ? यही हुआ कि गज मुनि ध्यानारूढ बने रहे और बद्ध कर्मों की विशेष रूप से निर्जरा हुई सवर तो हुआ ही। विवाह करते ही कुछ प्रहरों की अपनी आयु ज्ञात कर जो तत्काल शीघ्र दीक्षित हो गये और ससुराल वालों के द्वारा किये गये सिर पर सिगडी जला देना आदि अनेक उपसर्गों को शात परिणामों से सहकर प्रथम शुक्ल ध्यान को माड कर एक भवावतारी सर्वार्थ सिद्धि के अधिकारी बन गये। नमोस्तु गजकुमाराय मुनये।

महाशय जी ! इस पुरुषार्थ की तो थोडी प्रशसा कर दीजिये या अतिशयों ही की तारीफ करना सीखा है। समाधितन्त्र मे लिखा है कि—

आत्मदेहान्तरज्ञानजनिताह्लादनिर्वृत ।
तपसा दुष्कृत घोर भुञ्जानोऽपि न खिद्यते ॥३४॥

इसका ऐदपर्य यह है कि आत्मा और शरीर के भेद ज्ञान से उत्पन्न हुए सुख से सर्वांग निष्णात हो रहा मुनि उपसर्ग या घोर दुष्कर्मों के फलों को भोगता हुआ भी तपश्चरण द्वारा स्वल्प भी खेद को प्राप्त नहीं होता है। कौन कहता है कि उपसर्ग के अवसर पर मुनि को दुःख हो रहा है भ्रात जी ! वे साधु तो परम अतीन्द्रिय आत्मीय आनन्द म निमग्न हो रहे है। न्यारे पुद्गल को कुछ भी होय। उपसर्गों से डरकर नहीं, प्रत्युत उपसर्गोंको सहकर ही अनेकानेक मुनि

मोक्ष को गये हैं। भावो की शुद्धि पर लक्ष्य रक्खो।

सुनिये! ढाई द्वीप से ही मोक्ष जाते हैं पैंतालीस ४५ लाख लम्बे चौड़े गोल इस मनुष्य लोक से सात राजू ऊपर सिद्ध क्षेत्र मे सर्वत्र अनन्तानन्त सिद्ध ठसाठस विराजमान हैं ढाई द्वीप मे भी जहा निराकुल, निरापद होकर मुनि ध्यान कर सकते हैं उस कर्म भूमि की अपेक्षा अठारह गुना स्थान पर्वत नदियों कुलाचल, जघन्य भोगभूमि, मध्यम भोग-भूमि, उत्तम भोग भूमि, कुभोग भूमि, म्लेच्छ खण्ड, सरोवर, क्षुद्र नदियो, खेत, नगर, गाव आदि ने घेर रक्खा है। कुलाचल, महा नदियो, भोग भूमियो, मेरु पर्वत, कुभोग भूमि आदि के ऊपर सिद्ध क्षेत्र मे तो घोर विघ्न पूर्वक संहरण दशा से ही मुनियों ने मोक्ष प्राप्ति की है और उस ढाई द्वीप के अठारहवें भाग उचित स्थल मे भी अनन्तानन्त निर्ग्रंथो ने निठुर घोर उपसर्ग सहे हैं। जैन सिद्धात की वसंत वायु किधर बह रही है ?

श्री राजवार्तिक मे उपसर्ग सहकर अन्तकृत् केवली सिद्धों की संख्या अनन्तानन्त मानी हैं। दस, बीस की कथा से क्या पूरा पड़े ? सच्चे जैन बन्धुओ ! अपने २ धर्म पर डटे रहो, धर्मात्मा को दुःख भी सुख स्वरूप मालुम होता है। वस्तुतः धर्मपालन सुखमय ही तो है। उमा स्वामी भगवान् ने "दुःखमेव वा" इस सूत्र द्वारा हिंसा झूठ आदि अधर्मों

को दु ख रूप ही कहा है। पीछे सुख और चारित्र गुण का विवेक विचारते हुये टीकाकारोंने 'दुःखके कारण या दु ख के कारण के भी कारण हिंसादिक हैं' यों व्याख्या की है। किन्तु मूल सूत्रार्थ बड़ा अच्छा जचता है कि सभी पाप दु खमय ही हैं।

'हिंसा, दगाबाजी, विश्वासघात, कुशील इन कुकर्मों से भविष्य में दु ख होगा।' इसकी अपेक्षा मुझे यह अध्यात्म ग्रन्थों की व्याख्या बड़ी अच्छी लगती है कि ये सब पाप तत्काल दु ख रूप ही हैं।

इसी प्रकार क्षमा, ब्रह्मचर्य, तपश्चरण, सम्यग्दर्शन, जिनार्चन इन धर्म पोषक क्रियाओं से (भविष्य में न जाने कब) सुख होगा। इस वाक्य के स्थान पर "ये उक्त क्रियायें सुख स्वरूप ही हैं— धर्म सुखमेव" यह शास्त्र वाक्य मुझे पुष्ट प्रतीत होता है। जबकि आत्मा में ज्ञान, सुख, वीर्य, चेतना, अस्तित्व आदि सभी गुणों का अभेद हो रहा है। प्रवचनसार में—

"सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देव दाणमसि
सिद्धोपि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो ॥६८॥"

इस गाथाके अनुसार इसी सिद्धान्त को पुष्ट किया गया है। तथा

"सोक्खं सहावसिद्धं णत्थि सुराणं पि सिद्ध मुवदेसे,

ते देः वेदणट्टा रमन्ति विपयेमु रम्मेसु" ॥७१॥

इम गाथा द्वारा इन्द्रियजन्य सुखों को दुःख रूप ही स्वीकार किया है।

ऐसी दशा में निज आत्मस्वरूप की प्राप्ति के सिवाय और किस क्षणिक सुख की प्राप्ति की अभिलाषा म पड़े हो अन्तरदृष्टि खोलो, ज्ञानदृष्टि को पसारो।

चिन्तामणि को पाकर भी क्यों भटकते हुये काच से बदला करते हो। सेवा करने वाले सच्चे-स्वय-सेवक जैसे अपने कर्तव्य मे दु खों से नहीं घबडाते हैं और धन, मान की प्राप्ति आदि क्षणिक सुखों की भी वाञ्छायें नहीं रखते हैं। इनसे अग्रग्य गुणी निःकाक्षणा धार्मिकों को करनी पड़ती है। चक्रवर्ती या तीर्थङ्कर भी इस लौकिक विभूति को लात मारकर वैराग्य धारण कर लेते हैं। इन्द्र अहमिंद्र भी वैराग्य नामक धर्म को पालने के लिये मनुष्य होकर तप द्वारा कर्म-क्षय करने की अभिलाषायें रखते हैं। धर्म से अनपेत न्यायमार्ग बलवान है।

दुक्खक्खउ कम्मक्खउ समाहिमरण च वोहिलाहो य।

दु खों का क्षय हो (लौकिक सुखोंका भी न होना) कर्मों का क्षय हो, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति हो, समाधि पूर्वक मरण हो। ये इच्छाये बुरी नहीं हैं। हा लौकिक सुखों की अभिलाषायें करना बन्ध का बीज है। धर्म सेवन का

फल यदि रति अतिशय स्वर्गादि माना जाय तो कभी मोक्ष हो नहीं सकती क्योंकि द्रव्य-कर्म से भावकर्म और भावकर्म से द्रव्यकर्मका सन्तान-बद्ध ताता बढ़ता ही चला जायेगा ठीक बात तो यह है कि धर्म सेवन का फल अलौकिक आनन्द में मग्न हो जाना है। जो कि स्वय-वेद्य है दृष्टान्तों से नहीं समझाया जा सकता है। गम्भीर अनुभव करो।

"उदयति न नयश्रीरस्तमेति प्रमाणम्'

धर्म-पालनेमें हुये आत्मीय आनन्दानुभव को समझाने में न नय चलती है और न प्रमाण का ही अधिकार है।

जिसका सत्य, शील, क्षमा, ब्रह्मचर्य, तपश्चरण इन धर्मों के पालने में तत्काल समरस आनन्दोदगम नहीं होता है उनको भोगभूमि या देवगतिके क्षणिक सुखोंकी अभि-लाषा से अथवा ऐसे ही अन्य प्रलोभनों के लिये धर्मसेवन नहीं करना चाहिये। अन्यथा भारी घाटम रहोगे 'तुम धर्मका रहस्य रत्तीभर भी नहीं जानते हो, आचार्य महाराज आपको दोनों लोकों का अविनाशी सुख देना चाहते हैं।

जो माता अनेक कष्टों को सहकर स्वपुत्र का पालन पोषण इस लिये करती है कि यह मेरा लड़का बड़ा होकर मेरे लिये उत्तम भोजन देगा, गहना बनवायेगा, कमाई ला कर सौंपेगा, वह पुत्रपोषनका अणुमात्र सुख नहीं पह-

चानती है। यदि माताको पुत्र के प्रति अमित वात्सल्य करने मे उक्त अभिलाषायें लक्ष्य होवें, तो गाय अपने बच्चों से इतना अनुराग न कर पाती, चिडिया अपनी सन्तान से प्रीति न निबाहती, बन्दरिया अपने बच्चे को दिन रात छाती से न चिपटाये फिरती यहा तक कि वानरी मोहवश मरे बच्चे को भी दो चार दिन तक नहीं लटकाये डोलती क्योंकि पशु पक्षियों को भावी धन या गहनो की स्तोक भी प्रेप्सा नहीं है।

वस्तुत माता के पास स्वकीय औरस पुत्र के लिये नैसर्गिक अगाध स्नेह का समुद्र भरा हुआ है। उस स्वाभाविक प्रेम-स्रोत के सन्मुख धन आदिक की अभिलाषायें लात मारने के योग्य हैं। अस्तु, यहा मोही माता पुत्रों मे लौकिक सुख की प्राप्ति का भाव सम्भव भी हो सकता है किन्तु वीतराग के धर्म सेवन मे तो अणुमात्र भी इन्द्रियजन्य सुखो की अभिलाषा रखना सर्वथा निषिद्ध है आज अनेक कुपित स्त्री पुरुष दूसरो को प्रभूत गालिया देते हैं, शाप देते हैं। प्रसन्न माता पिता, गुरुजन अपनी सतान को आशीर्वाद देते है। सुभद्रा और उत्तग ने अभिमन्यु को जयाशिष दी थी। गायें अपनी सतान की प्रसन्नता (खैर) मनाती हैं। किन्तु उपद्रुत स्थानों पर किये गये नर सहार या कुर्बानी के दिन वध की जा रही गायों पर

शुभ कामनाओं का क्या प्रभाव पड़ा ? बकरे की मा अपने बच्चे को चिरञ्जीव होने की आशिष प्रदान करती रहती है, परन्तु बकरा ईद के दिन अथवा शक्ति देवी के सामने यूप से बधे हुये पशु की बलि पर उन दुआओं का क्या असर पड़ा ? अत कहना पड़ता है कि अपनी, परकी इष्ट अनिष्टार्थ चिंताओं को छोड़ो। तभी तो मुनि महाराज किसी को लौकिक अशीष नहीं देते हैं मात्र धर्म वृद्धि कह देते हैं वाग् ऋद्धि धारी साधु जैसा कह दें वैसा नीरोगता, पुत्र प्राप्ति, विजय अर्थ लाभ हो ही जाय, इसमें रागद्वेष बढ़ता है मुनि को अपनी तपस्या का व्यय करना पड़ता है। यों आशीर्वाद देना बड़ा महगा पड़ता है ज जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि, जा जहा जैसा जिस प्रकार होनहार है उसको इन्द्र, अहमिन्द्र, जिनेन्द्र भी नहीं चलायमान कर सकते हैं। जीव और पुद्गलो की कारणोंके अनुसार हो रही परिणतियों पर तुम क्या कर सकोगे ? साम्प्रदायिक या प्रत्येक जीव की पुण्य पाप करनी को विचारो। हा अपनी शक्ति को नहीं छिपा कर मात्र दया करने का यथाचित पुरुषार्थ कर डालो। तुम्हारे ऊपर यदि मार पीट हनन का प्रकरण उपस्थित हो जाय तो यथाशक्ति न्यायोचित विरोध करते हुये आप समाधिमरण करने के लिये कटिबद्ध रहिये। धर्म के सिवाय

जैनो का आधुनिक कोई मण्डल रक्षक नही दीख रहा है, संसार, शरीर, भोगों से विरक्त हो जाना ही जीव आत्मा का परम हित है। यह शरीर धर्म का साधन है। स्वाध्याय उपवास, कायोत्सर्ग ध्यान, शुभक्रिया, सामायिक आदि धर्म इस शरीर से ही पलते हैं। अत छोटे हेठे कष्टो पर झट समाधिमरण करलेना उचित नहीं है। हा, आयुके अन्त हो जानेका निर्णय करचुकनेपर द्विविध सन्यास लेनेमे आलस्य भी नहीं करा। बढिया समाधि मरण हो जाने से सात आठ भव मे साधक जीव अवश्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है। इन्द्रिय विषय, कषाय, उपभोग, शरीर, परिग्रहों मे उत्कट वैराग्य होना चाहिये।

श्री देवनन्दी आचार्य ने लिखा है कि—

न तदस्तीन्द्रियार्थेषु यत्क्षेमङ्करमात्मन ।
तथापि रमते बालस्तत्रैवाज्ञानभावनात् ॥

इन्द्रिय-जन्य भोगो मे कोई ऐसा तत्व नहीं है जोकि आत्मा का कल्याण करने वाला होय, तो भी यह अज्ञानी जीव स्वास्थिवत् अज्ञान से उनमे रम रहा है।

यह जगत् भी कैसा भोला भाला है चाहे किसी भी बात पर लट्टू हो जाता है। रोटी के टुकड़े पर झगड रहे पिसनहारी के चार लडकों को देखकर निस्सन्तान महारानी जी का चित्त ईर्ष्यावश कलपता है कि यदि ये मेरे बच्चे

होते तो मैं इनको दिन रात आंखों में छाप रखती इसी तरह पिसनहारी भी रानी के गहने, कपड़े, भोगों को देखकर ललचाती रहती है। आचार्योंने ऐसे भोगों को धिक्कार है! कथानक के भीतरी ज्ञान पर लक्ष्य वालो ऊपरी वाच्यार्थ पर ही नहीं। जैसे कि दशलक्षण में तत्त्वार्थ सूत्र की पूजा करने वाले भक्त जन प्रत्येक अध्याय पर अर्घ्य चढ़ाते हैं। प्रत्येक सूत्र की भी पूजा करने के भाव हैं। यों "नारका नित्याशुभतरलेश्यापरिणाम, नारक सम्मूर्छिनो, काय-प्रवीचारा, नचिव्यप्तनोगापु, तत्प्रदोषनिन्हव" आदि सूत्रों के वाच्यार्थों का आदर नहीं करते हैं। हां इन सूत्रों के लक्ष्यार्थ ज्ञान की अष्ट द्रव्य से पूजा करते हैं, नमस्कार करते हैं। फलितार्थ पर पहुंचिये। कथा ग्रन्थों का स्वाध्याय करने वाले स्त्री पुरुष जन भी चाहे किसी भी बात पर बिना सोचे समझे प्रसन्न हो जाते हैं और चाहे किसी भी कथानक पर कुपित हो जाते हैं इसकी चिकित्सा क्या करें?

विचारो तो सही कि भरत चक्रवर्ती ने क्या खोटा कार्य किया था जिससे कि उनका करोड़ों खरबों मनुष्यों में अपमान हुआ। आप पाठक भी भरत चक्रवर्ती को क्यों घृणा की दृष्टि से देखते हैं? तथा बाहुबलि ने कौन सा बढ़िया काम किया था? जिससे आप दृष्टियुद्ध, जल-

युद्ध और मल्लयुद्ध मे चक्रवर्ती को जीतने वाले बाहुबली पर लट्ट हो जाते हैं ? वस्तुतः (आखिर) भरत जी उनके बड़े भाई थे, चक्रवर्ती भी थे, छोटे भाई बाहुबलि उनको नमस्कार कर लेते तो क्या बिगड जाता ? देखो बाहुबलि जी को एक वर्ष घोर परिश्रम करना पडा तब कहीं केवल-ज्ञान उपजा और भरत चक्रवर्ती ने केवल सात, आठ अन्तर्मुहूर्तों म ही केवलज्ञान विभूति को पा लिया। बात यह है कि उनका पुण्य, पाप जो कुछ भी होय, हम लोग व्यर्थ रागद्वेष के पचड़ों में पड़कर चाहे जिसको उल्टा सीधा उत्तीर्ण पत्र दे दते हैं। ऐसी आदतें पडी हुई हैं जिनसे कि हम लाचार हैं।

प्रद्युम्नकुमार ने अपने बाबा और ताऊ तथा नारायण पिता को भी परास्त कर दिया। इसमे आप प्रद्युम्नकुमार पर क्यों प्रसन्न हो रहे हो ? आपको उनके बाबा, ताऊ, पिता, पर घृणा दृष्टि डालने का कोई अधिकार नहीं हैं। क्या यह प्रद्युम्न जी ने अच्छा किया ? आप ही उत्तर दो ? प्रद्युम्न लडका था पीछे सोच गया, ऐसे व्यर्थ के पक्षपात न किया करो। अपनी निर्बलताओं का वशीकरण करो। लब्धाक देनेवाले परीक्षकको विचारक और निष्पक्ष होना चाहिये।

लव और अकुश ने अपने पिता और चाचा को

हैरान कर दिया बेचारे राम चलाने पर भी लक्ष्मण के चोट में भारी चोट आई। अलावा पुत्र रामचन्द्र लक्ष्मण भी यों विचारने लगे कि— परन्तु ये कुमार ही बलभद्र नारायण हैं हम तो नाम मात्र हैं, क्यों जी? यह क्या कुमारों का शुभ कर्तव्य था? आप ताडा दिक लव, कुश, ठोकरों पर प्रसन्न या अप्रसन्न होते जाते हैं। इस इस ही प्रकार व कार्य परीक्षा-फल (रिजल्ट) देने के महान् निमित्तों द्वारा यह जीव प्रतिक्षण रागद्वेषों में फंसा रहता है, और हर्ष विषाद द्वारा कर्मबंध किया करता है बाजार में जाकर किसी सजी हुई दुकान को अच्छा और फूहड़ दुकान को भद्दा बुरा कह देता है। यह नहीं विचारता है कि इस रागद्वेष परणति से मेरी आत्मा ने कितने दुष्कर्मों को बांध लिया है। कर्म बन्ध के निमित्तों का सूक्ष्म गवेषण कीजिये।

आचार्य ने समाधितन्त्र मे लिखा है—

"आत्मज्ञानात्परं कार्यं न बुद्धौ धारयेच्चिरम्।
कुर्यादर्थवशात् किंचिद् वाक्कायाभ्यामतत्परः॥"

आत्मज्ञान के अतिरिक्त किसी भी कार्य को देर तक विचार में मत लाओ। आत्मा का शुद्ध सचेतन होते रहना ही परम धर्म है। क्षमा आदि को धारते समय भी आत्म-स्वचेतन हो रहा है। तभी तो दशलक्षण की जयमालाओं

म— "ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तमक्षमाधर्मांगाय नमः" "ओं ह्रीं परमब्रह्मणे उत्तममार्दवधर्मांगाय नमः" इन मन्त्रों के द्वारा उत्तम क्षमा, मार्दव, ब्रह्मचर्य आदि धर्मों को परम ब्रह्म यानी शुद्ध सिद्ध परमात्मा स्वरूप कहा है। अष्टकर्म निर्मुक्त सिद्ध अवस्था मे जिनार्चन, मुनिदान, पुष्पांजलि आदि व्रत धारण, इन्द्रिय विजय, कषाय निग्रह, समिति पालन, परीषह जय और धर्म्य शुक्लध्यान आदि परिणाम नहीं हैं। ये परिणतियां ससार अवस्था की हैं किन्तु उत्तम क्षमा, अहिंसा आदि धर्म वहां विद्यमान हैं। श्री समन्तभद्राचार्य जी ने भी "अहिंसा भूतानां जगति विदितं ब्रह्म परमं" अहिंसा धर्म को परम ब्रह्म स्वरूप कहा है। प्रवचनसार म भी—

"जो णिहद मोह दिट्ठी आगम कुसलो विराग चरियह्मि।

अब्भुट्ठिदो महप्पा धम्मोत्ति विसेसिदो समणो ॥९२॥"

इस गाथा द्वारा यही बात कही गई है।

"ध्यानकोटिसमा क्षमा"

करोड ध्यान के समान एक क्षमा है। ध्यान करना ससार है क्षमा सिद्ध स्वरूप है। तीव्र क्रोध को आप एक घण्टे तक करने मे ही संतप्त हो जायगे जबकि क्षमा को असख्य वर्षों तक करके भी आनन्दामृत गटकते रहते हैं

जो धर्म उस परमोत्कृष्ट मोक्ष को प्राप्त करा सकता है या शुद्धात्म स्वरूप ही है। इसका फल पुण्य बंध मानना एक प्रकार धर्म की अवना (तौहीन) करना है। सुर्सी (मजर) का कार्य विद्वान् से कराना चाहते हो। भोले अज्ञानी जीव चाहे कुछ भी कहें सुनें किन्तु मनस्वी मुनिराज ऐसी अवज्ञा को सहन नहीं कर सकते हैं चाहे कैसा भी दुःख पड़े, उपसर्ग आ जाओ, क्लेश पडो वे अपने धर्म्य कर्तव्य से च्युत नहीं होते हैं। उस नाहर के लागों को दीख रही क्लेशमयी अवस्था मे जैन मुनि अपनी सुखमय स्वात्मानुभूति मे निमग्न हो रहे हैं। दुःखों को बलात्कर मत बुलाओ किन्तु आये हुये दुःखों से घबडाओ भी नहीं। आचार्यों ने लिखा है कि—

"अदुःखभावित ज्ञान क्षीयते दुःखसन्निधौ।
तस्माद् यथाबल दुःखैरात्मान भावयेन्मुनि ॥"

इसका अभिप्राय यह है कि दुःखरहित अवस्था म धारण कर लिया ज्ञान पुनः दुःख उपस्थित हो जाने पर झट नष्ट हो जाता है तिस कारण अपनी शक्ति अनुसार दुःखों करके आत्मा को भावित करते रहो। घोर तपश्चरण द्वारा ही आत्मा के अन्तस्तल म छिपे रहे गुण प्रगट होते हैं।

अत घोर परीषह के समय भी उस मुनि की ध्यान-

कनानता पर ही लट्टू हो जाओ जिससे कि वे मुनि दु:खों का वेदन न करते हुये भी अपने धर्मपर सुमेरुपर्वतवत् दृढ रह कर पुरुषार्थ द्वारा कर्मों को काट रहे हैं। प्रवचनसार मे ऐसे ज्ञान को सुखस्वरूप ही पुष्ट किया है।

जाद सय समत्त णाणमणन्तत्थ वित्थद विमल।
रहिय तु ओग्गहादिहि सुहति एग तिय भणियम्॥

इस गाथामे शुद्धज्ञान को एकान्त सुखस्वरूप ही सिद्ध किया है एक अर्थ मे अश उपाशों को जान रहे अविरुद्ध अनेक प्रमाण ज्ञानों का पिण्ड ही तो ध्यान है।

सीता के ब्रह्मचर्य से आप अग्नि का जलमय हो जाना मानते हैं। विशल्या के स्नान जलसे हजारों रोगों का दूर हो जाना स्वीकार करते हो। मैं तो कहता हूं कि इन अल्प सार थोथे राग-द्वेष के प्रकरणों या पुण्य फलपर न्यौछावर न हो उठना, किन्तु सीताकी उस दशा पर मुग्ध हो जाओ जिस समय कि वह अपने ब्रह्मचर्य पर दृढ़ रहना चिन्तती हुई शुद्धात्मा का ध्यान कर रही समाधि-पूर्वक अग्निकुण्ड मे सोत्साह घुस पड़ी थी। अथवा अग्नि परीक्षा के पश्चात् रामचन्द्र की प्रार्थना करने पर भी घर न जाकर ससार के शरीर भोगों से विरक्त होकर सीता ने झटिति केश लोचकर आर्यिका की दीक्षा ले ली थी। यह धर्म का फल अग्नि परीक्षा से बहुत बडा है।

विशल्या के उस धर्म को विचार कर प्रसन्न होना कि यह सम्राज्ञी लड़की जितेन्द्रिय होकर तीन हजार वर्ष तक उचित व्रत पालती हुई अजगर सर्प के मुख में ग्रीवा तक निगली जा चुकी थी और तड़ते तड़ते उस समय आये तथा सर्प को मारने के लिये उद्यत हुवे अपने पिता चक्रवर्ती को सर्प पर दया करने की प्रार्थना कर रही थी कण्ठगत प्राण होते समय उस दया धर्म को पाल रही विशल्या की पूर्व आत्मा परम गुणिनी थी उस धर्म के द्वारा मार्ग चलते हुवे उसको यह तुच्छ अतिशय भी प्राप्त हो गया था कि उसके स्नान जल से अनेक रोगियों को लाभ हुआ। लक्ष्मण की शक्तिबाण भी उसी के प्रभाव से निकला था। विज्ञजन उस लौकिक अतिशय की क्या प्रशंसा की जा सकती है जो कि विशल्या की युवावस्था में ही अन्यरूप रह जाता है हा जन्म, जरा, मृत्यु रोगों का विनाश करने वाला धर्म का अतिशय वस्तुतः प्रशंसनीय है "धर्माय तस्मै नमः"। ऐसे धर्म को हम उसकी प्राप्ति के लिये त्रियोग से नमस्कार करते हैं। राग—द्वेष पूर्ण चेष्टाओं को फेंक कर ही वीतराग विज्ञान गुणमय धर्मको देख पायोगे।

अतिशयधारी अनेक द्रव्य लिंगी मुनि भाव शुद्धि के बिना अनन्तबार ग्रैवेयक जा चुके हैं। हम आप भी जा

चुक होंगे। हा भाव विशुद्ध हो जाय तो बत्तीस बार से अधिक मुनिलिंग नहीं धारण करना पड़े। मुनिधर्म से बत्तीसवें बारम मोक्ष हो ही जाय। भले ही सात दिनो तक कदाचित् तीन लोकमें कोई भी उपशम सम्यक्त्वी न पाया जाय किन्तु एक जीव के प्रथमोपशम और क्षयोपशम सम्यक्त्व असंख्यातवार हो सकते है। पुन. मोक्ष हो ही जायगी। उपशम श्रेणी चार बार हो सकती हैं किसीको नहीं भी होय। धर्म तो आत्माका तदात्मक स्वभाव है। धर्मपर आत्माका अनादि अनन्त अधिकार है जब विभाव रूप अनन्तानुबन्धी कषाय के सस्कार अनन्त भव तक चलते रहते हैं तबउससे भी अधिक सस्कार गहरा स्वभाव मानेगये धर्म का घुस जाता है तभी तो एक बार हुये सम्यग्दर्शनका स्रोत आत्मामें जब जग गया तब कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तनकाल मे अवश्य सम्यक्त्व को उपजा कर मोक्ष मे धर ही देवेगा, पूर्व पर्याय नष्ट होती है तब उत्तर पर्याय को अपना चार्ज सम्भाल देती है तभी सस्कार टिक पाता है काल क्रम से ये सस्कार धु धले भी होते जाते हैं यो अनेक सस्कार मर जाते है। किसी २ धारणा ज्ञान की वासनायें तो प्रतिदिन ऐसी होती हैं कि पाच मिनट या घण्टे दो घण्टे तक के उत्तरवर्ती असख्य ज्ञानो को चार्ज सम्भाल कर ही झट नष्ट हो जाती है। कोई सस्कार

पुरुषार्थ से टिकाऊ कर दिया जाता है। छात्र व्याकरण घोकते हैं, गोम्मटसार की गाथायें रटते हैं। आस्ताम्।

अनेक मोही जीवों ने धर्म पालन को एक खिलवाड़ समझ रक्खा है। मोक्ष प्रद धर्म का ऐसा जघन्य उपहास किया है कि यदि वह धर्म हमारे लौकिक इच्छानुसार प्रयोजनों को नहीं साधता है तो ऐसे धर्म की कल क्या आज ही और अभी हम अश्रद्धा करने के लिये तैयार खड़े हैं। वे मिथ्यादृष्टि जीव समझ बैठते हैं कि जिन-पूजन, पानी छानना, रात्रि-भोजन त्याग, अभक्ष्य परित्याग आदि व्यवहार धर्मों में क्या रक्खा है? आनंद से रहो और आनंद से रहने दो, ऐसे नववायु में रहनेवाले नवयुवकों के प्रति आचार्यों का यही आदेश है, कि— बन्धुओ! विचार करो, उक्त देवदर्शन, जिनार्चा आदि धर्म पालने में ही ठोस आनन्द भरा हुआ है, अधार्मिक परिणतियों में नहीं। व्यवहार धर्म से ही निश्चय धर्म की प्राप्ति होगी। मार्ग यही है। अन्य तो सब विडम्बना है। अन्तरात्मा पर लक्ष्य दीजिये।

आजकल निकृष्ट काल में भी स्वार्थ त्याग, परोपकार, जितेन्द्रियत्व, मितव्यय, संतोष, क्षमा, धैर्य आदि धर्मांगों की महती प्रशंसा है। देश नेताओं, माताओं, स्वयं सेवकों के स्वल्प निःस्वार्थ धर्म्य सेवाओं पर दृष्टि डालिये, आप

को स्वार्थी, हिंसक, इन्द्रिय लोलुप, लोभी, जीवों की अपेक्षा इनमे विशेष पवित्रता, निर्मलता और विलक्षण आनन्द-अनुभव प्रतीत होगा, व्यर्थ मे किसी अच्छी वस्तु का निरादर करना ठीक नहीं। ४५ वर्ष पहले की बात है जबकि कुछ मन-चले लोगों ने देश भक्तों की यो हँसी उडाई थी कि आप लोग विदेशी घडी नहीं लगाया करें, किन्तु पानी से भरी डेढ़ मन की बोझ वाली नाद को पीठ पर सतत बांधे रहा करें जिसम कि एक छोटे छेद वाला कटोरा पडा रहे, क्योंकि पहले भारत मे पहरेदार इसी पद्धति से घण्टा बजाया करते थे।

इसी प्रकार न्याय शास्त्र और व्याकरण शास्त्र पढ़ने वालों की भी तेली का बैल, चिल्लाता हुआ मेंढ़ा आदि दृष्टांतों द्वारा खिल्लिया उडाई जाती थीं किन्तु ये सब मूर्खता के युग अब नहीं रहे हैं। विचारवान् परीक्षक उक्त उपहासों से नही घबडा कर बहुत कुछ आगे बढ़ गये हैं। और अपना ध्येय भी प्राप्त कर लिया है। स्वराज्य मिल गया है। साम्राज्य भी मानवों को हीं प्राप्य है।

मूढ़ जीव अष्टकर्मों को नाश करने की सामर्थ्य वाले धर्म से नौकरी लग जाना आदि तुच्छ असाधनीय प्रयोजनों को नही [illegible] हुआ देखकर झट धर्म से अरुचि

कर बैठते है जैसे कि अमूल्य रत्न या पारस पत्थरों को देकर यदि कँजड़ी बेर मोल नहीं देती है, तो वह अज्ञानी बालक या रत्न पारस पत्थर को शीघ्र फेंकने के लिये आतुर हो जाता है। हम कहा तक कहें मूर्ख जनता ने नमस्कार मन्त्र का ऐसा दुरुपयोग करना विचार लिया है कि यदि पाखाना दूर है और दीर्घ शङ्का का वेग हो रहा है तो वे कुछ देर तक मल रुका रहने के लिये मन्त्र का चमत्कार अजमाना चाहते हैं। कभी २ मलरुद्ध अवस्था में मल निस्सरण के लिये भी उनकी ऐसी नीयत हो जाती है। पाचन या रेचन गोली के स्थान पर मन्त्र को बैठाना चाहते हैं सो भी तब, जबकि वह उक्त दोनों काम करदे। क्या कहें आप तो आप ही हैं।

लोगों ने ऐसी ऊट उटा रक्खी है कि यदि आज सिनेमा जाने के लिये आध घण्टे की देर हो गई है तो नमस्कार मन्त्र बोल कर मन्त्र द्वारा यह फल हो जाना चाहते है कि या तो आध घण्टे के लिये सिनेमा बिगड़ जावे या रील चलाने वाला बीमार हो जावे और हम जब आध घण्टे बाद पहुँचे तब अवश्य ठीक हो जावे। प्रयोजन यह है कि हमारे पहुँच चुकने पर सिनेमा का प्रारंभ होवे। भले ही अन्य बीसों मनुष्य मन्त्र पढ़कर ठीक समय पर पहुँच चुके हों इन्हे उनकी परवा नहीं है

मन्त्र से चाहे जो कुछ काम निकालना ही जो ठहरा।

भाइयो! ये मन्त्र बोलने वाले स्वार्थी पुरुष शास्त्र सुनने के लिये कभी ऐसा विचार नहीं करते हैं कि हे भगवन् आठ बजे होने वाले शास्त्र, व्याख्यान, या पूजन हमारे पहुंचने पर ही प्रारम्भ होवें, प्रथम तो यह धार्मिक कार्यों में योग ही नहीं देते और कदाचित् पण्डित जी के कहने से टरमरायें भी तो शुभ कार्यों में वे यही देखते रहते हैं कि आधा पौन घण्टा शास्त्र बच जाने दो तब पहुंचेंगे हाजिरी तो लग ही जावेगी। कौन घण्टे भर तक वहां मन मार कर बैठा रहे। मन्दिर जी में तो हमारा पांच मिनट में ही जी ऊब जाता है इत्यादि।

इसी प्रकार मुकद्दमा जीत जाना, बीमारी दूर हो जाना, बीजक में नफा होना, स्वप्न में अफीम का अङ्क दीख जाना आदि प्रयोजनों में भी इस नमस्कार मन्त्र को अव्यर्थ कार्यकारी देखना चाहते हैं। यदि इन इन्द्रिय-लोलुप, जीवों का अभीष्ट सिद्ध नहीं हुआ तो ये मक्खराज उसी समय नमस्कार मन्त्र की भर पेट निंदा, अश्रद्धा, घृणा करना शुरू कर देते हैं। "कषायभावान् धिक्"

भाइयो! मन्त्र पर आप दोष क्यों मढ़ते हैं? लौकिक कारणों से भी तो तुम्हारे कतिपय कार्य नहीं सध पाते हैं। दवाइयां फेल हो जाती हैं औपरेशन उलटे

यदि नहीं तो महावीर जी की भावना करने का तुम को क्या अधिकार है ? यदि समर्थ होकर भी आप किसी पिता के पुत्रों को लाभ नहीं पहुंचा सकते हो तो उस पिता से भी कोई आशा न रक्खें। पिता से गुरु और गुरु से अर्हत् परमेष्ठी बहुत बड़े माने गये हैं।

वीर सेवको! धृष्टता को कृतज्ञता से बदल लो, सभी जीवों की ओर विशेषतः सधर्मा जैनों को अपनी सेवाओं से भरपूर करदो। भरत चक्रवर्ती ने अपने सधर्मा भाइयों को पुष्कल द्रव्य दिया, सन्मान दिया, धर्मात्माओं की सहायता करने से अपने प्रभुत्व को सफल समझा। अपने भाव उदार रक्खो, भगवान भी तुम्हारे साथ हैं। निर्दोष का निर्दोष के साथ मेल मिल जाता है।

वस्तुतः निमित्त नैमित्तिक भाव ऐसा है कि श्री महावीर स्वामी के नाम कीर्तन, दर्शन, पूजन, उपकरण चढ़ाना आदि क्रियाओं से आत्मा के परिणामों की विशुद्धि होती है उससे पुण्यबंध होता है और पाप कर्मों की स्थिति या अनुभाग की हानि, अशुभ कर्मों का शुभ हो जाना संक्रमण, पुण्यकर्म स्थिति का उत्कर्षण, पापा-पकर्षण, पापसंवर हो जाते हैं। यों निमित्त मिल जाने पर तुम्हारे प्रयोजन भी सिद्ध हो जाते हैं। श्री महावीर प्रतिमाराधन से लाखों करोडो के मनोरथ पूरे हो चुके हैं

हो रहे हैं। किन्तु किसी भी वैद्य या डाक्टर की चाहे कोई भी दवाई विषम रोग को नष्ट कर ही दे ऐसी व्याप्ति नहीं है, हा काललब्धि या पापोदय की मन्दता हो जाय तो ऐसी दशा मे औषधि से लाभ हो जाता है। तद्वत् कचित् कदाचित् किसी को लौकिक चमत्कार भी मिल जाते हैं। कोरे उन अतिशयों के लिये ही उन्मुख मत बैठे रहो, व्यर्थ हर्ष विषाद द्वारा कर्मबंध परम्परा बढ़ेगी। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव रूप सामग्री नहीं मिली तो बैरग लौटना पड़ेगा। अत सबसे अच्छी बात तो यह है कि लालसायें ही नहीं उपजाओ, केवल आत्म शुद्धियों का सचय करो। बन्धुवर ! अभीष्ट पदार्थों मे उतना सुख नहीं जितना कि मान रक्खा है ये सब चर्चायें वीर प्रभु ने ही समझाई हैं। यो तो भाइयो ! श्री महावीर स्वामी तीनों लोकों की रक्षा करने म तत्पर हैं जिनके लिये वादीभसिंह सूरि ने कहा है कि—

श्रियः पति पुण्यतु नः समीहित
त्रिलोकरक्षानिरतो जिनेश्वर ।
यदीयपादाम्बुजभक्ति— सीकर,
सुरासुराधीशपदाय जायते ॥

कर्तृवादी मतवनो, देखो दोनों वादी, प्रतिवादी महावीर जी की साधना करते हैं जिनेन्द्र भगवान तो सबके

समीहित कार्यों के साधक हैं। मान् भक्त के कोरे कागज पर हस्ताक्षर कर देते हैं। मुकदमा जीता सो जीता ही, मुकदमा हारने वाला भी जीत गया समझो। धन या जमींदारी के मिल जाने से अनेकों के प्राण गये हैं। सुपुत्र और उनकी स्वतन्त्र वहुओं से भी अनेक माता पिताओं को क्लेश भोगना पड़ रहा है। 'अधिक यश' भी प्राणों का लेने वाला हो जाता है। लोक में कहते हैं कि "अधिक बड़ाई जीवन लेय" थोड़ा अपयश भी होता रहे। एक मन भर मीठी खीर में छ मासे लवण डाल दो तभी मधुर रस व्यक्त होगा शुक्लवस्त्र में स्वल्प नील दे देने पर भूरापन जच जाता है। स्वच्छ पानी नीला दीखता भी है। अच्छा आस्ता। देखो, फिर तुम ही कह दोगे कि महावीर जी ! तुम तो सर्वज्ञ थे मेरी हत्या करा देने वाली जमींदारी मुझे क्यों दिला दी ? गाली देने वाला या मारने वाला लड़का और इज्जत बिगाड़ने वाली पुत्रवधू, क्यों प्राप्त कराई, ऐसे यश में क्या रक्खा है ? जो अपमृत्यु का कारण हो। इत्यादि उपालम्भ महावीर स्वामी जी को न झेलने पड़ें इसी लिये बच्चे को सच्चा साप न दिलाने के समान त्रिलोक-त्रिकालज्ञ वीर प्रभु ने मान् तुम्हारी तत्काल चाही हुई वस्तु न दिलाकर हित ही किया। और योग्य पुत्र दिला देने में भी क्या रक्खा है ?

जिसके लिये अनगार धर्मामृत मे प्रकाट विद्वान् आशाधर जी ने किसी आचार्य का यह उक्त लिखा है कि—

जाओ हरइ कलत्त, वड्ढन्तो वड्ढिमा हरई।
अत्थं हरइ समत्थो, पुत्तसमो वैरिओ णत्थि॥

लडका उत्पन्न होतेही स्त्रीको छीन लेता है। बढ़वारी करता हुआ हमारी बढवारी के साधनो पर डाका डालताहै। समर्थ होकर प्राणाधिक प्रिय धन को हडप लेता है। पुत्र के समान कोई वैरी नही है। इसी प्रकार भूमि या धन की निन्दा ग्रन्थों म की है यह बात महान आचार्य जी ने महावीर जी की आज्ञा से ही तो लिखी थी यों उनकी निषेधी हुई वस्तुओ को आप उन्ही से मागते है भला यह भी कोई मनुष्यता है ? श्री वर्द्धमान स्वामी तो सबका हित ही करते हैं और करेंगे भी। भक्तों के लिये उनका भण्डार खुला है चाहे जितना ले लो अज्ञानी जीवों के मनोरथ भी दिन म दस बार बदल जाते है। अत वे तीन लोक तीन काल मे हित स्वरूप तत्व तुमको बता देते हैं इसी का आदर करो यह तो भक्तिको की उक्त पद्यानुसार अर्थ अलङ्कार की बात हुई।

अब द्रव्यानुयोग पर आओ "नहि भेषज्यमातुरेच्छानुवर्ति" दवाई कोई रोगी की इच्छा पर नहीं चलती है। हा ठोस लाभ कराती है। सम्यग्दर्शन को अक्षुण्ण बनाये रक्खो। बन्धुवर्गे! जैन न्यायशास्त्रानुसार कार्यकारण

समीहित कार्यों को मानते हैं। मानू भक्त के कोरे कागज पर हस्ताक्षर कर देते हैं। मुकदमा जीता भी जीता ही, मुकदमा हारने वाला भी जीत गया समझो। धन या जमींदारी के मिल जाने से अनेकों के प्राण गये हैं। रुपया और उनकी स्वतन्त्र बहुओं से भी अनेक माता पिताओं को क्लेश भोगना पड़ रहा है। अधिक यश भी प्राणों का लेने वाला हो जाता है। लोक में कहते हैं कि "अधिक बड़ाई जीवन लेय" थोड़ा अपयश भी होता रहे। एक मन भर मीठी खीर में छ मासे लवण डाल दो तभी मधुर रस व्यक्त होगा शुक्लवस्त्र में स्वल्प नील दे देने पर भूरापन जाता है। स्वच्छ पानी नीला दीखता भी है। अच्छा आस्ता। देखो, फिर तुम ही कह दोगे कि महावीर जी! तुम तो सर्वज्ञ थे मेरी हत्या करा देने वाली जमींदारी मुझे क्यों जिता दी? गाली देने वाला या मारने वाला लड़का और इज्जत बिगाड़ने वाली पुत्रवधू, क्यों प्राप्त कराई, ऐसे यश में क्या रक्खा है? जो अपमृत्यु का कारण हो। इत्यादि उपालम्भ महावीर स्वामी जी को न झेलने पड़ें इसी लिये बच्चे को सच्चा साप न दिलाने के समान त्रिलोक-त्रिकालज्ञ वीर प्रभु ने मानू तुम्हारी तत्काल चाही हुई वस्तु न दिलाकर हित ही किया। और योग्य पुत्र दिला देने में भी क्या रक्खा है?

>

निमके लिये अनगार धर्मामृत मे प्रकांड विद्वान् आशाधर जी ने किमी आचार्यका यह उक्त लिखा है कि—

'जाओ हरइ कलत्तं, वड्ढन्तो वड्ढिमा हरई।
अत्थं हरइ समत्थो, पुत्तसमो वैरियो णत्थि॥

लडका उत्पन्न होनेही स्त्रीको छीन लेता है। बढ़वारी करता हुआ हमारी बढवारी के साधनो पर डाका डालताहै। समर्थ होकर प्राणाधिक प्रिय धन को हडप लेता है। पुत्र के समान कोई वैरी नहीं है। इमी प्रकार भूमि या धन की निन्दा ग्रन्थो मे की है यह बात महान आचार्य जी ने महावीर जी की आज्ञा से ही तो लिखी थी यों उनकी निषेधी हुई वस्तुओ को आप उन्ही से मागते है भला यह भी कोई मनुष्यता है ? श्री वर्द्धमान स्वामी तो सबका हित ही करते हैं और करेंगे भी। भक्तों के लिये उनका भण्डार खुला है [illegible] जितना ले लो अज्ञानी जीवो क मनोरथ भी दिन मे [illegible] बदल जाते है। अतः वे तीन लोक तीन काल मे [illegible] तत्व तुमको बता देते है इमी का आदर करो [illegible] कों की उक्त पद्यानुमार अर्थ अलंकार की बात [illegible]

अब द्रव्यानुयोग पर आओ "नहि [illegible] नुवर्तिं" दवाई कोई रोगी की इच्छा पर [illegible] है। हा ठोस लाभ कराती है। सम्यग्दर्शन को [illegible] बनाये रक्खो।

जैन न्यायशास्त्रानुसार [illegible]

भाव पर लक्ष्य करो। संसारी जीवों के कार्माणवर्गणाओं का योग द्वारा प्रतिक्षण आस्रव होता रहता है तत्कालीन कषायानुसार स्थितिबंध और अनुभागबंध भी पडते रहते हैं। प्रतिक्षण एक निषेक का उदय आकर जीवों को सुख दुःख, मोह, अज्ञान आदिक कर्म फल भोगने पडते हैं। यों अपने भले बुरे विचार अनुसार बांधे हुये कर्मों का भी लक्ष्य करो, पुण्य पाप की व्यवस्था का चमत्कार आप लोग देख रहे हो। देवों के कण्ठ से अमृत झरता है और हम लोगों के कण्ठ से प्रतिश्याय (नजला)।

अपने अन्तरङ्ग शुभ परिणामों पर दृष्टि डालो, दूसरों पर दोष मढ देने की अपेक्षा स्वकीय सञ्चित पाप कर्मों की शक्ति को निरखिये तब नमस्कार मन्त्र और श्री महावीर स्वामी पर आक्षेप करना। श्री महावीर स्वामी जी ने अपनी अपवाद रहित पावन देशना से आपको पुण्य, पाप का फल प्राप्त करना भी आदेशित किया है। व्यर्थ क्यों बौरा रहे हो? स्वस्थता की शीघ्र औषधि सेवन करो। वीर भगवान ने तो अन्धों को अनाप सनाप रत्न बांटे हैं भले ही कोई अज्ञ उन अमूल्य मणियोंका परिज्ञान आदर न करे। एतावता उन मोही जीवोंका ही भवितव्य अच्छा नहीं दीखता है अभी संसार-परिभ्रमण लम्बा पडा हुआ है।

विचारशील भ्रातृगण ! जिनको दिन रात मोह, मद, का नशा चढ रहा है वे तो विचारे विचार ही क्या सकते हैं। हा जो थोडी सी भी अन्त दृष्टि रखते हैं उनके लिये इतना ही कथन पर्याप्त है कि नमस्कार मन्त्र का उच्चारण करते समय या महावीर की मान्यता करने पर जो आत्म-विशुद्धि हुई है या तीव्र पाप का उदय मन्द पड गया है बस उतने हीं फल पर सतोप करो अधिक फल प्राप्ति के लिये हाथ मत पसारो। अष्टसहस्रीमें ऐसे तीव्र रागी को "अमूल्यदानक्रयी" दोप से दूषित बताया है। यानी मूल्य न देकर दुकानसे संत मेत सौदा झपटना चाहता है। आप पुण्य रहित दशा मे तीव्र पुण्यवानों का फल लूटना चाहते हैं। क्यो ? बताओ न।

जयपुर के दीवान अमरचन्द्र जी और विद्वद्वर्य प० टोडरमलजी महोदय के प्राण कैसे गये ? यदि ये महानुभाव स्पष्ट वृत्तांत कह देते तो अन्य अनेक मनुष्य मारे जाते और ये बच जाते किन्तु ये अहिंसा, करुणारूप ठोस आत्मीय धर्म को पालते रहे, इन्होंने विपत्ति पडने पर कदली घात सहित सन्यासरूप परिणामों से शरीर को छोड-दिया, बताओ जीव-दया का दृष्ट-फल उनको क्या मिला? सच पूछो तो इनको ठोस धर्म फल प्राप्त हुआ। "श्रेयासि बहुविघ्नानि" को भूल जाते हो।

इस कलिकाल में पापी जीव अधिक उपजते हैं उतने पुण्यवान् नहीं। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी निकृष्ट हैं। अतः सामग्री मिल जाने पर पापों का उदय आ जाने से श्रेष्ठ कार्यों में अधिक विघ्न आ जाते हैं। चनों के साथ घिनुआ भी पिस जाता है। यों कदाचित् सज्जनों को भी खिन्न होना पड़ता है। राजवार्तिक में कर्मों करके आत्मा को फल देने में द्रव्य क्षेत्र काल भावों को भी निमित्त बताया है।

जीवन्धर स्वामीने आसन्न—मृत्युक कुत्तेको नमस्कार मन्त्र दिया, मरकर कुत्ता धर्म प्रसाद से देव हो गया उस देव ने आकर महनीय मुनि से प्रथम जीवन्धर स्वामी को नमस्कार किया, कई निधियें देकर सत्कार किया। श्री पार्श्वनाथ ने सर्प-सर्पिणी को मन्त्र दिया उन्होंने सौधर्म से भी अधिक विभूतिशाली धरणेन्द्र, पद्मावती होकर श्री पार्श्वनाथ का उपकार किया। इन दृष्टांतों से अन्य भी, पुराने और नवीन अनेक उदाहरण हैं।

इन दृष्टांतों से स्वार्थी लोग यों झट कह बैठेंगे कि जो हमारा पहिले या पीछे उपकार करे उस पर हम भी उपकार कर सकते हैं। किन्तु दयालुओ! यह दया धर्म का सिद्धांत नहीं है। यदि उपकृत जीव उपकार न करे प्रत्युत घोर अपकार भी करे, जैसे कि कमठ ने एक तरफा

वैर निभाया था। सर्प, बिच्छू, खटमल, ततैया भले ही काटने ही जावें तो भी उपकारी महानुभाव ऐसे दुष्टों पर भी सतत कृपा ही करते रहते हैं। विशल्या ने अपने भक्षक सर्प पर प्राण जाते हुये भी दयादृष्टि रक्खी थी। ऐसे आत्मीय पुरुषार्थ द्वारा किया धर्म भविष्य में पुण्य को ही बांधे यह नियम नहीं, ये कृत्य तो सञ्चित कर्मों के नाश करने में प्रधान कारण हैं। तभी तो मुनिराज उपसर्ग या परीषह आ जाने पर अपने कर्मों की निर्जरा हो जाना ही प्रधान फल विचार लेते हैं। बारहवें गुणस्थान तक विचार होता है, ऊपर सक्रित्व नहीं। सर्वज्ञ देव का केवलज्ञान अविचारक है। विचार करना मन का कार्य है। तेरहवें गुणस्थान में द्रव्य मन है, भाव मन नहीं और सिद्धों के द्रव्य मन, भाव मन, कोई भी नहीं है।

अत शास्त्र को पढकर वाच्यार्थ को जान लेना या दौड रही रेलगाडी से बम्बई का चाहे कौन से प्रदेश से दूरत्व निकटत्व के आपेक्षिकज्ञान में विषय हो रहे निस्सार सकल्पित झूठे सच्चे ज्ञेयों को वे नहीं छूते हैं। हा निर्विकल्प ज्ञानियों के उन झूठे सच्चे ज्ञानों को वे जान रहे हैं। वस्तुभूत त्रिकालवर्ती लोकालोक के निखिल द्रव्यगुण पर्यायों को वे युगपत् प्रत्यक्ष देख रहे हैं। इस विषय की विशेष चर्चा करनी हो तो मुझसे मिलकर ज्ञात कर लीजिये।

शास्त्र मन्थित तत्त्व का निरादर कर बैठना उचित नहीं।

जिज्ञासु को गम्भीरता, सहनशीलता, अशीघ्रता, विवेक, सहिष्णुता, विनय से व्यवहार करना चाहिये। स्वल्पमतभेद से तीव्र कषायें कर बैठना यह टेव जैनों में से जितनी शीघ्र दूर हो जाय उतना ही शीघ्र जैन सगठन हो जायगा, पाप—भार भी हल्का हो जायगा। अत्यल्प मतभेद पर उतनी परिणामो मे तीव्रता अन्यत्र नहीं पाई जाती है। बनारस म राजपूताने का निरामिष भोजी ब्राह्मण विद्यार्थी उन बगाली या मैथिल गुरु जी के चरणो मे साष्टाग मस्तक झुकाकर नमस्कार करता है। कोई २ तो चरणो को धो कर पीजाता है जो कि निरर्गल, मद्य, मास सेवन करते हैं। अब प्रकरण पर आइये।

जीवों के सभी सुख, दु ख इन पुण्य, पाप से सम्बन्धित होंय यह एकात नहीं है। कतिपय सुख दु ख ससारी के पुरुषार्थ से भी हो जाते हैं।

क्षपक श्रेणी या तेरहवा गुणस्थान अथवा सिद्ध अवस्थायोंके सुख तो नियमत इच्छा के बिना पुरुषार्थ से ही होते हैं। सबसे बडा पुरुषार्थ मोक्ष है जहा कि आत्म स्वकीयवीर्य (अनन्तबल) से अपने स्वाभाविक परिणमनों मे निमग्न है, पर-निमित्तों का आघात बाल बाल बचाये

हुये है इसको छोटा उद्योग न समझ बैठना।

जीवों मे परस्पर सुख दुःख लेना देना मानने वालो से यह बात और भी कहनी है कि सामायिक करते समय एक श्रावक को सैकड़ों मच्छर काटते हैं या मक्खियां सताती हैं (श्लोकवार्तिकमे "सज्ञिन समनस्का" सूत्र की टीकामें एकेंद्रिय द्वीन्द्रिय चींटी मक्खी मच्छर आदि जीवो मे भी ईहा, अवाय, धारणा, स्मरण, अभिलाषायें होना सिद्ध कर दिया है।) तो यह श्रावक क्या पुनर्जन्मो मे मक्खी, मच्छर, पर्यायों को धारेगा, और वे मच्छर क्या श्रावक बनेंगे? बदला तो तभी चुकाया जा सकता है किन्तु यह बात नहीं है। वस्तुतः जैन सिद्धात दूसरे ही प्रकार का है क्वचित् ही दुःख सुख बदले से दिये जाते हैं बहु भाग तो एक ओर से ही सुख दुःख दिये जाते हैं।

अन्तरङ्ग म धारा प्रवाह से पुण्य पापोदय का स्रोत चालू है ही। परिशेष मे पुरुषार्थ भी तो कोई वस्तु है। यह भी सम्भव है कि किसी अन्य जीव ने हम को सताया हो न्यारे द्रव्य क्षेत्र कालों मे दूसरेके द्वारा या अचेतन कर के हमको उसका फल मिले। बध रहे एक सौ बीस कर्मोंमें नियत जीव, या नियत क्षेत्र, काल नहीं लिख दिये जाते हैं। जहा योग्य प्रकरण बन बैठा वहाही कर्मों ने फल दे दिया। योग्य सामग्री न मिलने पर कर्म फल दिये बिनाही

झर जाते हैं। जैसे कि हमारे आपके देवगति, नरकगति आदि कर्मों का प्रदेशोदय हो जाता है। बंधे हुये कर्म अपना फल देवें ही या पुरुषार्थ कर्मों के अनुसार होय, ऐसी व्याप्ति नहीं है। अविपाक निर्जरा उत्कर्षण अपकर्षण, संक्रमण आदि कर्मावस्थायें भी तो होती हैं। कर्म-चेतना कर्मफल चेतना को समझो।

इस समय हम सांसारिक सुख दुःख का विचार करना है। किसी को हमने पूर्व जन्म में मारा पीटा हो, तभी वह जीव मारे पीटे यह नियम नहीं है। समुद्र मे बडी मछलिया छोटी मच्छलियों को विना अपराध खा जाती हैं, एक छपकली हजारों मक्खियों को चट कर जाती है, एक तीतर लाखों दीमकोंको खा डालता है, एक मछलीमार वधिक करोड़ों मछलियों को मारता है। क्या उन सभी मछलियों ने पूर्व जन्मोंम धीवर को जालमें फँसाया था? क्या कसाई को बकरों ने पहिले भवों में मारा था? क्या परस्त्री-गामी राजा का उन बलात्कारित स्त्रियों ने पूर्व-जन्मों म सतीत्व भङ्ग किया था?, नहीं। यह सब नये तौरसे किये गये पाप हैं।

श्री पार्श्वनाथ भगवान के जीव ने कमठ को किसी भी भव म हानि नहीं पहुंचाई थी।

एक बात यह भी लगे हाथ समझ लो-कि अयोध्या

नगरीमें एक बुड्ढा भैंसा मार्गमें गिर पडा, हजारों अयोध्या वासी नरनारी उसको पांवों से रोंदते हुवे निकलते रहे, बड़े कष्ट से भैंसाकी मृत्यु हुई, वह मरकर क्रूर असुर हुआ और उसने अयोध्या में भयङ्कर महामारी रोग फैला दिया, अनेक मनुष्य क्लेश पाकर मर गये और बहुत से जीवों की रक्षा विशल्या के स्नान जल से हो सकी।

हा जी! आज कल तो सैकड़ो नर नारी, हजारों भैंसे, लाखों गायें, करोड़ो मछलियें, असख्य घुन अण्डे, पक्षी, या अन्य दुर्बल सबल जीवों का सहार हो रहा है। किन्तु एक भी नर गाय या भैंसा मरकर किसी स्वघातक को कष्ट नहीं पहुंचाता है। अनुदिन हिंसा होना बढ रहा है। कपट, पापाचार, व्यभिचार, आपक, इच्छायें बहुत दिनों दिन बढ़ती जारही हैं। ऐसी दशा में आप पाप का चमत्कार कुछ भी नहीं देख रहे हैं। बस, गुरुजी का आदेश यह है कि तत्वतः फलाफल को न देखकर अपने धर्म पर दृढ़ बने रहो। परीक्षा काल में ठीक उतरो-बहक न जाना, अन्यथा दीर्घ आजनजव भोगना अनिवार्य हो जायेगा, समझे!

अपना प्रिय पुत्र पिता, माता, स्त्री, पति, भ्राता मित्र आदि भी मरकर कोई उपकार या समाचार नहीं लेते देते हैं। हम भी तो पूजन दर्शनको जाते समय मार्गमें कीचड

माटी म मर रह, खाये मताये जा रहे कीड़ों की रक्षा यहां करते हैं ? पकड़ कर मारनेके लिये ले जा रहे चूहों, कुत्तों बकरों, गायों को कितने भाई बचाते हैं ? धर्म कुछ न कहलाओ, दवाँको ही दोष क्यों देते हो ? न तो ये कृपालु परोपकारी देव या मनुष्य ही यह विचार करते फिरते हैं कि इस जीव के पास धर्म प्रत्यक्ष दीख रहा है अत इस मानव या तिर्यंच की रक्षा कर दो। यह कार्य कर देना किसी का स्वकर्तव्य (ड्यूटी) नियत भी नहीं है और न जड पुण्य पापों की ओरसे किसी को उनका कार्य करते रहने की नौकरी ही मिलती है। और न धर्म सेवने वालों को अपने जड पुण्य से ऐसी उपकार कराने की या उपद्रव टल जानेकी मनीषा करना उचित है। कहीं घुणाक्षरन्याय से कोई कार्य बन गया तो त्रिलोक त्रिकाल म व्यभिचार रहित अन्वय व्यतिरेक वाले कार्यकारण मारखा क्या पूरा पड़े। हा अचेतन अर्थ अपने द्रव्यादि अनुसार कार्य करते रहे हैं उस अचिन्त्य कठोर शक्ति से अनधिकार अपना मस्तिष्क मत लड़ाओ।

कोई कोई उच्छृङ्खल मनुष्य यों कह बैठते हैं कि आज कल धर्मात्मा अधिक दुःख पाते हैं, पापी मौज उड़ाते हैं, सती विधवाओंसे वेश्यायें सुखिनी हैं, कई कसाई या कम्पनी बनाकर जूता बचने वाले हिंसक मनुष्य तो

मोटर या चौकड़ी मे बैठकर सैर करते फिरते हैं। इसके विपरीत जिनके घर मे जिन मन्दिर जी हैं वे दु खी होते जा रहे हैं। कतिपय बिम्ब-प्रतिष्ठा कराने वालों की दुर्दशा हो चुकी है। सयमी, तपस्वी, दयावान् पुरुष कष्टमे हैं। वीम व्रती ब्रह्मचारी त्यागियों को एक व्यभिचारी गुण्डा हरा देता है। कुस्ती मे पछाड सकता है।

भाइयो! यह बात नहीं है सञ्चित तीव्र पाप पुण्य अपना कार्य तो करेंगे ही। "अर्थक्रियाकारित्व वस्तुनो लक्षणम्" कतिपय धर्मात्मा दु ख पाते हैं। साथ ही बहुत से पापी भी अनेक कष्ट उठा रहे हैं। अनेक दीन, दरिद्र, भिखारी, चिर-रुग्ण, या लदने वाले घोडे, भैंसे, मुर्गी, मछली आदि जीव बहुत दु खित हैं।

` इसी प्रकार कोई पापी पूर्व पुण्यानुसार मौज उड़ाता है। तो अनेक सच्चे धर्मात्माभी आनन्दमग्न हो रहे हैं। घबराते क्यों हो कुछ अपने अन्तरङ्ग कर्तव्योपर भी लक्ष्य दो, कारणों को सूक्ष्म दृष्टि से निहारो, घर म मन्दिरजी हैं तो सूतक, पातक, लडाई, कलह, कदाचार आदि अनेक कुकर्म घर मे न होने दो, विनय रक्खो, प्रतिष्ठा विधि म यश प्राप्तिका लक्ष्य मत रक्खो, ब्रह्मचारी, सदाचारी पुरुषों से मन्त्रविधान कराओ प्रतिष्ठा की अप्रतिष्ठा न करो, स्वय सदाचारी बने रहो, इन अव्यर्थ कारणोंसे अवश्य ठीम *

प्राप्त होगा। कोरी तर्कभक्ति कार्य कारिणी नहीं है। हम तो कईवार कह चुके हैं कि धर्म पालनके साथ लौकिक सुख प्राप्ति का साक्षात् सम्बन्ध ही नहीं है।

यदि धर्म धारण का फल "दुर्जन तोष न्याय" से साता वेदनीय, उच्चगोत्र, शुभनाम, आयुस्त्रिक इन पुण्य-कर्मोंका बन्ध जाना भी मान लिया जाय तोभी धर्मपालन से तत्काल लौकिक सुख हो जाने की वान्छा मत करो, न जाने पुरार्जित कितने चिरबद्ध असख्यात जन्मों वाले सत्तर के टरकोटी सागर, या वासनानुसार अनन्त वर्षों के तीव्र स्थिति अनुभाग वाले पाप कर्म आज कल उदय में आ रहे हैं। और आज कल का निर्दोष धर्मपालन न जाने कितनी आबाधा कालके बाद तुमको शुभ फल देव क्या पता है? कर्मों का उतना डर नहीं जितना कि कर्मों की वासनायें महा भयङ्कर हैं। बालकवत् जल्दी न मचाओ शीघ्रता करने से काम बिगड जाता है। धैर्य से हथेली पर सरसों को जमाओ, प्रवचनसार म श्री कुन्दकुन्दाचार्य जी ने कहा है कि—

जदि सन्ति हि पुण्णाणिय परिणामसमुब्भवाणि विविहाणि
जणयन्ति विसयतण्हं जीवाणं देव दन्ताणम् ॥

उपाध्यायजी ने इस गाथा और इसकी अगली गाथा द्वारा पुण्योंको दु खों का हेतु सिद्ध किया है। जोक करके

क शोषने की अभिलाषाका नढिया दृष्टात देकर युक्तियों
रके राद्धान्त पुष्ट किया गया है। महान् पाप का आस्रव
होते रहने की दशा मे पुण्यास्रव की क्षणिक प्रशसा कर
सकते हो, मात्र पुण्यास्रव को ही चरमध्येय मत समझो।
पुण्य की सुख वासनाएं भी पाप सस्कारों के समान ससार
भ्रमण को वढाने वाली है। मिथ्यादृष्टि या अभव्य जीव
अनेक वार ग्रैवेयकों में हो आया एतावता कोई सार नहीं
निकला।

वैष्णव जन प्रतिदिन देवदेवियो से इष्ट वस्तु की
प्रार्थना करते हैं, कालीदेवी, विन्ध्येश्वरी तथा अपने गाव
या निकटवर्ती अनेक देवी देवों की स्वेच्छा पूरणार्थ पूजा
पत्री करते हैं। मुसलमान भी ख्वाजा शरीफ, मीया–
अमरोहा, आदि को अपनी उत्कण्ठायें (तमन्नायें) पूरी
करने के लिये मनाते हैं। सो ठीक है, वे रागी द्वेपी देव
हैं, और वैसे ही आराधक हैं "यथा देवस्तथा पूजा"
किन्तु जैनो के देव तो वीतराग हैं, और जैनोंका लक्ष्यभी
रागद्वेष रहित वीतराग विज्ञान की प्राप्ति करना है। फिर
यह दुकानदारी कैसी ? व्यर्थ प्रतारणा और आत्मवञ्चना
की जा रही है।

खेद की वात है कि जैनों मे अजैनो के कतिपय ऐसे
व्यवहार आ ... 'भगवान चाहगे तो आपका

हो ही जावेगा, सर्वज्ञ ज्ञाता, दृष्टा, परमात्मा विद्यमान हैं। एक ही माया है' इत्यादि व्यवहारों से तत्त्वज्ञान को क्षति पहुँचती है। सम्यग्दर्शन बिगडता है। अत ऐसे प्रसङ्गों से बचे रहो, विपरीत या सशयास्पद विचारों को जैनतत्त्वों पर मत लादो। जैनो में दूसरों का अर्जैन साहित्य घुस पडा है उसको छेक छेक कर निकाल डालना भी सुदुस्तर है अब तो जैन बचारे हिन्दुओ मे ही गिने जाते हैं। भगवान् रक्षक हैं।

कर्तृवादी वैष्णव या खुदा भक्तोंके सहवास म रह कर देवभक्तिसे लौकिक सुखोंकी प्राप्ति करना ही धर्म का चरम फल मत समझ बैठो। मोहम्मदीय यवनों की अपने इष्ट देव पर अटूट श्रद्धा है, अपने स धर्मियोंसे हार्दिक अनुराग है दीन कहते ही लाखों करोडों एक जीवन मरण हो जाते हैं। धम पर सब कुछ अर्पण करने को सन्नद्ध रहते हैं मात्र इतना अनुकरण करो, अभक्ष्य भक्षण, हत्या अग्नि-दाह, अपवित्रता का नहीं।

जिनदेव, गुरु, शास्त्र म और जिनधर्म म गाढ श्रद्धा रक्खो। महावीर जी के दर्शन से, सम्मेदशिखर जी की यात्रासे कर्मभार अवश्य हलका हो जाता है, विशुद्धि बढ़ती है इस सर्वज्ञोक्त को मानो। ईश्वरवादियों ने ईश्वरको सर्व शक्तिमान् मान रक्खा है। किन्तु जैन सिद्धातम वीर प्रभु

को अनन्त शक्तिशाली कहा है। कल को अभव्य यदि मोक्ष हो जाना माग बैठे, तो वे बेचारे भी क्या करें। यदि तीर्थंकरका वश होता तो सबसे प्रथम जगत भर की कर्म वर्गणाओं को ही नष्ट कर डालते। किन्तु यह कार्य वे नहीं कर सके।

चार निकाय के देव भी क्या दे सकते हैं? पुरुषार्थी जीव को स्वशक्तियों पर ही अवलम्बित रहना चाहिये, अपनी कमाई सर्वोत्कृष्ट है यही स्वालम्बन जैन सिद्धान्तका रहस्य है। न्यायशास्त्र में "हिताहित-परिहार-समर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्" हितकी प्राप्ति और अहितका परिहार कराने म समर्थ स्वकीय ज्ञानको माना है। अत अपने समीचीन ज्ञानो को सम्भालो, अशरण अनुप्रेक्षाका चिन्तन करो, तीव्र कष्ट पड़ने पर कोई शरण नहीं दीखता है। इन्द्र, अहमिन्द्र, क्षेत्रपाल कोई रक्षा नहीं करता- है। श्री जिनेन्द्रदेव भी कृतकृत्य शुद्धात्मा होकर सिद्धालय में विराजमान हैं, आप किस सहायता की भिक्षा के प्रपञ्च मे फसे हो, आत्मबल बढ़ाओ। मागनेसे देव या पुरुष कुछ भी नहीं देता है। जो स्वय दीन है वह दूसरोको क्या निहाल करेगा। अपनी आत्मा की विडम्बना कर तुच्छ मत हीं बन जाओ।

यदि एक दो देवो ने धर्मात्माओं की रक्षा की है तो

साथ ही साथ यह कहना पडता है कि अनेक क्रोधी देवों ने मुनियों पर अकारण घोर उपसर्ग भी करे हैं। देव, मनुष्य, तिर्यच और अचेतनों द्वारा किये गये उपसर्गों के हजारों दृष्टान्त प्रथमानुयोग म पाये जाते हैं। दृष्टान्त सभी प्रकार के विद्यमान हैं। सुग्रीव या लक्ष्मणको किस ने मारा ? मनुष्य भी घातक या रक्षक हैं।

उत्तर पुराण मे लिखा है कि एक स्त्री को भयङ्कर सर्प ने काटा प्रियपत्नी की बुरी अवस्था देखकर उसका पति दौड़ा हुआ मुनिराज पर गया, और बोला कि यदि मेरी पत्नी जीवित हो जाय, तो मुनिपुङ्गव ! मैं आपकी सहस्र दल कमल से पूजा करूगा मुनि मौनव्रती थे दैवयोग से स्त्री जीवित हो गई श्रद्धा वश पति बेचारा हजार पत्तों के कमल को लेने गया तलवार यहां ही छोड गया था। इधर निकृष्ट स्त्री ने एक शिष्ट चोर से सकेतपूर्ण बातें कहीं पति को विघ्न समझा, चोर उसका भाव ताड़गया, पतिने आकर कमल से मुनिराज की पूजा कर, जो मुनिराज के सन्मुख शिर झुकाकर नमस्कार किया, उसी समय उस दुष्ट स्त्री ने पतिको मार डालनेके लिये तलवार का प्रहार किया किन्तु झटिति उस भले चोर ने पति की रक्षा की। इस कथा भागसे आप लौकिक सुख दु खोंको हेय समझने का शिक्षा ग्रहण करेंगे ऐसी सम्भावना है।

प्रिय पाठको ! धर्मका फल अतीव गूढ है । मैं स्वयं शब्दों द्वारा आपको समझाने मे असमर्थ हूं । एक गंवार ग्वालियेने ध्यानस्थ मुनिको तीव्र जाडोमे कृपावश कम्बल उढा दिया था। किन्तु ऐसे कष्ट निवारण को मुनि तो उपसर्ग ही समझते हैं। आप ही बतलावें कि ग्वालिये को पुण्य हुआ या पाप ?

श्री समन्तभद्राचार्य जी ने लिखा है कि वर प्राप्तिकी इच्छा से आशावान् नहीं होना चाहिये।

अच्छा तो और भी सुनिये-कविवरेण्य महान् विद्वान् धनञ्जय कह रहे हैं कि—

इति स्तुतिं देव विधाय दैन्याद् वरं न याचे त्वमुपेक्षकोसि

हे देव ! आपकी स्तुति कर मैं दीनता से कोई वर नहीं मागता हू। क्योंकि तुम मे कोई राग द्वेष नहीं है, इच्छायें भी नहीं हैं। तुम तो सब से उपेक्षा करने वाले हो दोगे भी क्या ?

-अथास्ति दित्सा यदि वोपरोध-

त्वय्येव सक्ता दिश भक्तिबुद्धिम्।

कवि जी जिनेन्द्रदेव से कह रहे हैं कि यदि आप फिरभी कुछ देना चाहते हो, और मुझे बलात्रूपसे उकसा रहे हो कि "भाई कुछ न कुछ ले लो" ऐसा तुम्हारी ओर से भारी उपरोध होने पर मैं यह ही कहता हू, कि मुझे

कोई लौकिक फल नहीं चाहिये। हे भगवन्! केवल आप मे मेरी भक्ति बनी रहे यही वर मुझे दीजिये, यानी सम्यग्दर्शन को मैं मागता हू। स्तुतिकारोंने यहा जिनेन्द्र देव की भक्तिको ही सम्यग्दर्शन माना है और यह ठीक भी है।

बन्धुओ! सबसे छोटा धर्म श्रद्धा, भक्तिपूर्वक जिनेन्द्र दर्शन, पूजन करना है। और बडा धर्म क्षपक श्रेणी के शुद्ध परिणाम हैं। ये धर्म अपनी निवृत्ति अश से कर्म का सवर और निर्जरा ही करते है। हा पूजन, प्रतिष्ठा जाप्य दना, परोपकार, सरागसयम आदि के प्रवृत्ति अश से कुछ पुण्यबन्ध भी मान लिया जाय तो ऐसे फलकी धर्मात्मा कोई तीव्र अभिलाषा नहीं रखते हैं। परन्तु लौकिकसुख भोगना पडे, यह न्यारी बात है। भावसम्यग्दर्शन का अन्तस्तत्व पकड़ो, जिसको कि धारने वाले गोमट्टसार अनुसार लाखों करोडों मे आज कल यहां एक दो ही हैं। अत परिशेष म कहना पडता है कि निष्काम होकर धर्मका सेवन किये जाओ। "नेकी कर और दरिया में डाल" यह यवनों की किंवदन्ती भी इसी आशय को लिये हुये है।

शुभाशुभ फलों से अणुमात्र राग, द्वेष, मत करो, आत्मा आत्मा को आत्मा करके आत्मा के लिये आत्मा

से आत्मा में सचेतन करता रहे, यह अभेद पटकारों की भावना सर्वतो-भद्र है। सीता, सुदर्शन आदि को भी इसी स्वानुभूति से ही मोक्ष प्राप्ति हो सकती है। "उस व्यक्ति ने क्षणिक लौकिक सुख प्राप्त कर लिया हम नितान्त, धर्म में लगे रहते हैं, तो भी कुछ फल नहीं मिलता है" ऐसे तुच्छतापूर्ण विचारों को मन में मत लाओ, परीक्षक को ऐसे विचारों से ही तुम्हारे धर्मपालन का अनुमान लग गया, बस चुप रहो, अधिक कलई मत खुलवाओ। भूलें पर भूलें न करते जाओ।

कतिपय बड़े लोगों से भारी गलतियां हो जाती हैं। कुछ कम ८७ सत्तासी हजार वर्ष पहिले की बात है अंतिम बलभद्र, नारायण ने श्री नेमीश्वरनाथ भगवान् के भविष्य द्वारिका-दाह निरूपण पर पूर्णश्रद्धा न रख महती भूल की, जिससे कि वे अपने वृद्ध माता पिताओं को या कुटुम्बी-जनों की अथवा प्रिय प्रजा-जन आदि की रक्षा नहीं कर सके, अवसर आ पड़ने पर भी समुद्र जल से आग बुझा देने के बलकी शेखी पर तने रहे, और अन्तमें जो भगवान् ने कहा वही हुआ, सभी प्रयत्न व्यर्थ गये, समुद्र का जल पैट्रोल हो गया, सब शेखी भस्म धूल में मिल गई।

निकटतम बारह लाख वर्ष हुये उस युग की बात है कि उपान्त्य बलभद्र रामचन्द्र जी ने मोक्षगामी जीवों को

उदर मे धारने वाली गर्भिणी शीलवती सीता को हिंस जन्तुओं से भरपूर हो रहे भयङ्कर वन मे छुड़वा दिया। और इसी अपराध के कारण उनको सीता की अन्तर्दृष्टि से निकली हुई यह करारी लताड़ सुननी पड़ी, कि 'लोकापवाद से जैसे मुझे छोड़ दिया है वैसे कहीं धर्मको न छोड़ बैठना।' इसी प्रकार भयङ्कर अग्नि-प्रवेश की कठिनतम परीक्षा देने को स्वीकार कर लेना भी सीता की नितान्त गलती है। यदि कुछ ऊंच नीच हो जाता तो धर्म की कितनी वाच्यता होती, इस तत्वको भी कभी आपने सोचा है। माना कि रेत के मैदान म छलांग मारने वाला नट पाच गज पतरा मार लेता है, किन्तु उससे दो गज कम चौडे भयङ्कर कुए को नहीं उलघाना, देखो धोखा हो जायगा, काले भुजङ्ग के साथ मत खेलो। अपने घर के आगे एक गज ऊंचे चौतरे पर पाव लटका कर आप निर्भय बैठ सकते हो, किन्तु सतखने महल की सीधी भींत के ऊपर कहीं नीचे पर लटका कर नहीं बैठ जाना। पाद आकर्षण करता है और मृत्युयें खींचती हैं कदाचित् गिर पड़े तो अपयश के साथ अपमृत्यु ही प्राप्त होगी।

अनेक अत्याचार या कष्टों को सह लेने के पश्चात् सोमा, चन्दना, सुलोचना, वृषभसेना, अञ्जना, द्रौपदी या सुदर्शन, श्रीपाल, मानतुङ्ग आदि को कुछ थोड़ा सा

लौकिक चमत्कारभी प्राप्त हो गया तो इससे क्या पूरा पड सकता है। जब कि लाखों, करोडों अखण्ड पतिव्रताओं को रत्ती भर भी अतिशय न प्राप्त होकर कदली-घात मरण करना पडा है अनेकों को सतीत्व भङ्ग सहना पडा है। सीता को भी पूर्वभव मे यह बलात्कार झेलना पडा था। तभी तो सीता ने रावण के जीवके साथ वैसा बुरा निदान किया था। इस जन्ममें भी रावण की इस प्रशस्त दृढ़ प्रतिज्ञाने सीताको बचा लिया कि 'चाहना न रखनेवाली स्त्रीका मैं सेवन नहीं करूं गा।' असंख्य धर्म-प्राण पुरुष वर्ग भी बेमौत मार डाले गये, आज भी कई रियासतो, म्लेच्छ प्रांतों म सारी पोलें चल रही हैं।

मैं तो कहता हूं कि अन्यायी राजाने यहा ही क्या ? पहले अपने हृदयों को ही आप लोग टटोल कर देखें, हम लोगोंकी आत्मा मे धर्म कितना है ? और पापपङ्क कितना ठसाठस भरा हुआ है कि यदि आप आतुर होकर किंचित् धर्म सेवनका झटिति मे चमत्कार देखना चाहते हैं तो वह अधिक मात्रामे पाया जा रहा पापपुञ्ज भी अपना चमत्कार दिखानेके लिये सबसे आगे निकल पडेगा। बोलो ऐसी हालत मे आप चमत्कार देखने की उत्कण्ठा (हविश) को कम करेंगे या नहीं ?। विचारक भ्राताओ! निष्पक्ष होकर अपने-पाप और पुण्य की रोकड को मिलाके

पाई

की आय व्ययरा खाता ठीक करो। सद तेईस घण्टे तक क्रिया गया कषाय-जन्य पापही पहिले पूरा फल दिखायेगा। पीछे पर दिन रातमे मात्र आध घण्टा किये गये धर्मसेवन को फल दिखानेकी बारी आवेगी। ऐसी अवस्थामें आप जोर से पुकार मचायेंगे, कि महाराज हमें धर्म, अधर्म में से किसी का फल नहीं देखना है। हमें यो ही जैसे का तैसा पूर्व पापपुञ्ज की अवस्थामें निरापद जीवित रह लेने दो नहीं तो पाप के तीव्र प्रहारों क मार अभी दम घुट जावेगा जगत मे पापपुञ्जके गूढ़ रहस्यधारी (छिप रुस्तम) बहुत हैं जो कि आजकल तीसरे नरकतक जाते हैं। चौथे, पाचवें छठे, सातवें नरको को भी आज कल विदेह क्षेत्र से मरकर पापी जीव जाते हैं। किन्तु इन प्रत्येक नरक में प्रतिक्षण असख्याते जीव पहु चें तब इनका पेट भरे।

ढाईद्वीप म मनुष्य या सज्ञी असज्ञी तिर्यञ्च बेचारे कितने हैं। इनकी एक समयकी भी भूख नहीं मिट सक्ती बारह स्वर्गोंमे भी असख्याते जीव प्रतिक्षण जन्म लेते रहने चाहिये सम्यक्त्वी तिर्यंच सोलहवें स्वर्ग तक जाता है। तथा नरको से निकल कर असख्याते जीव कर्मभूमि के गर्भज जीवों म ही जन्म लेंगे। पहिले दूसरे स्वर्ग से आ कर तो एकेन्द्रिय भी हो जाता है, ऊपरले स्वर्गोंसे नहीं। यों नरको स्वर्गो को भरने वाले या वहा से आकर गर्भजों

मे जन्म लेने वाले जीवों का बडा भागी गोदाम, स्वयम्भू-रमण—द्वीपार्ध और स्वयभू रमण समुद्र हैं। जहा कि असख्याते व्रती अव्रती गर्भज तिर्यंच पाये जाते है। और समुद्र मे करोड़ों, अरबों असंख्याते राघव तन्दुल मत्स्य, सम्मूर्च्छन जीव भरे पडे हैं।

बारहवें स्वर्ग से ऊपरले देव तो गर्भज मनुष्यो में ही उपजत है लाखों करोडो वर्षोंमे एक देव मरता उपजता है।

भ्राता जी! यह सब गूढ़ चर्चाय महावीर भगवान् ने कही है वीर का उत्तरदायित्व अब त्यागी या विद्वानोंपर है। जैसे कि घरमे अकेली बुढ़िया ने चोर घुस आनेपर या आग लग जाने पर चिल्लाकर कह दिया कि चोर चोर आग लगी आग लगी। बस अब धन या प्राण बचा लेनेका उत्तरदायित्व सुनने वालोंपर आ जाता है। ससारी जीवों मे कषायो की आग लग रही है रत्नत्रय चुराये जा रहे हैं अतिवीर का आगम चिल्ला रहा है। अब धर्म को बचा लेना त्यागी और पण्डितों पर निर्भर है।

बन्धुओ! आज दिन १०० सौ म से पचानवे पुरुष शृङ्गाररस पूर्ण सिनेमा, नाटकों, खेल तमाशोंको देखते हैं, या देखने की इच्छा रखते है। अनेक स्त्रियाभी प्राचीन धर्म परिपाटियों को छोड़कर नवीन वायु मे बह गई हैं ये चेष्टायें अतीव निकृष्ट है। कतिपय मन—चले नवयुवक

दर्शन पूजन करते समय भी मन को इधर उधर और देख रत रहते हैं कि कोई सौन्दर्य, यौवनपूर्ण स्त्री स्वरूप आ रहा है, व अपने मन को आशा देते हैं कि बरहर धोखा, दगा, नालायक, हे मन ! तू यहाँ माता आदि झंझट में लग रहा है, यह माल सरकाने का फालतू काम तो फिर भी कर लेना, किन्तु यह काश्मीर का माल खास चला गया तो फिर हाथ आने का नहीं, देख कहीं चालाक माल न निकल जाय। मानो इसी लिये मन्दिरजी में आये थे। ऐसे लोलुपी और एक बार मनोज्ञ अबला को तक लगे। किन्तु अपनी टेकके अनुसार उसी दीन कातर दृष्टि को सतर्क होकर फैलावेंगे, तो उसको सौ बार काली, कानी लूली, कुरूपा को देख लेना भी करना पड़ेगा। क्यों जी जिस जूए में एक बार जीत और सौ बार हार होय, इस टोटे के धन्धे को कौन कब तक भुगतेगा, बताओ। आँखसे टकटकी लगाकर देखना, हाथ मिलाना, आसक्ति के साथ शरीर स्पर्श करना इससे रागी पुरुष की उत्तरोत्तर बहुत निर्बलता दर्ज हो जाती है। इस शक्ति का व्यय तुम बहुत दिनों तक नहीं झेल सकोगे।

जितेन्द्रिय के ही शारीरिक, मानसिक, आत्मीय शक्तियोंका विकास होता है अधिक स्पष्ट क्यों कराता हो। पूजन, ध्यान, तत्त्व-चर्चा आदि धर्म्म क्रियाओं में कितने

महानुभावों का और कितनी देर तक निश्चित मन लगता है ? इसका गहरा परामर्श करो।

अच्छा ब्रह्मचारी जब गाय, भैंस तरी को दोहने में भी सङ्कोच करता है घोडी, हथिनी पर चढ़ना नहीं चाहता भगवान की सवारी भी हाथी पर होती है, हथिनी, घोडी पर नहीं। जिनेन्द्र की पालकी स्त्रिया नहीं ले चलती हैं। ब्रह्मचारी काठचित्रकी स्त्रियों को भी सराग भावासे नहीं देखता है। तो आप भक्त जी ! क्या मन्दिरजी में दस मिनट के लिये इस वानर मनको वशमें नहीं करसकते हैं ? बस।

दयनीय भाई जीवो ! निकृष्ट आत्माओं में जब सम्यग्दर्शन ही नहीं तो अणुव्रत और महाव्रत हो जाना तो अतीव कठिन है। तभी तो सिद्धान्त चक्रवर्ती नेमिचन्द्राचार्य ने गोमट्टसार जी में उन्तीस अङ्क प्रमाण मनुष्यों में केवल दसमक प्रमाण मानव सम्यग्दृष्टि बताये हैं और संयमी तो मात्र आठ अङ्क प्रमाण है। इस प्ररूपणानुसार सम्भवतः अतिशयोक्ति से वर्तमान जैनों में चार छह सम्यग्दृष्टि मिल जाय। इस विषय का अधिक विवेचन "सम्यग्दर्शन की दुर्लभता" शीर्षक लेख में किया गया है विशेष जिज्ञासु आगमान्वित उस लेख का अध्ययन करें।

उपशम सम्यक्त्व, क्षायिक सम्यक्त्व, तो निर्मल है ही जब क्षयोपशम सम्यक्त्वमें अपने बनाये हुए जिनबिम्ब, जिन

दर्शन पूजन करते समय भी मन को इधर उधर शीघ्र फेंक देता है जहां से कि कोई सौन्दर्य, यौवनपूर्ण स्त्री स्वरूप आ रहा है, व अपने मन को आज्ञा देते हैं कि बेवकूफ, पागल, गधे, नालायक, हे मन! तू यहां माला आदि के झगड़े में लग रहा है, यह दाने सरकाने का फालतू कार्य तो फिर भी कर लेना, किन्तु यह काश्मीर का माल यहां से चला गया तो फिर हाथ आने का नहीं, देख कोई चोखा माल न निकलने पावे। मानो इसी लिये मन्दिरजी में आये थे। ऐसे लोलुपी जीव एक बार मनोज्ञ अबला को देख लेंगे। किन्तु अपनी टेवके अनुसार उसी दीन कातर दृष्टि को सतर्क होकर फैलायेंगे, तो उसको सौ बार काली, कानी लूली, कुरूपा को देख लेना भी करना पड़ेगा। क्यों जी जिस जुए में एकबार जीत और सौबार हार होय, इस टोटे के धन्धे को कौन कब तक भुगतेगा, बताओ। आसक्ति पूर्वक लगाकर देखना, हाथ मिलाना, आसक्ति के साथ शरीर स्पर्श करना इसमें रागी पुरुष की उत्तरोत्तर बहुत शक्ति खर्च हो जाती है। इस शक्ति का व्यय तुम बहुत दिनों तक नहीं सह सकोगे।

जितेन्द्रिय के ही शारीरिक, मानसिक, आत्मीय शक्तियोंका विराम होता है अधिक स्पष्ट क्यों कराते हो। पूजन, ध्यान, तत्त्व-चर्चा आदि धर्म्य क्रियाओं में कितने

है, धनी निर्धन हो जाता है, दरिद्र लडका गोद लिया जाकर करोडपति बन जाता है। मरने लायक रोगी वर्षों तक बीमार बने रहते हैं, हट्टा कट्टा युवा दो घण्टों में मर जाता है, कई परीक्षाये पास करचुके कोई सज्जन जीविका के लिये भटकते फिरते हैं, और हस्ताक्षर करना भी नहीं जानने वाले कतिपय व्यक्ति करोडपति बने हुये हैं। पटम हुरे भोक जाते हैं फलत करोडपति आज भीख माग रहा है, कुटम्ब के कुटुम्ब नष्ट कर दिये गये हैं। मुहल्ले जला दिये गये हैं। रेलगाडिया लूटी गई हैं। यह सब दैव दुर्विपाक है।

विचारशीलो! किसी के चमत्कारों को देखकर उधर ही उन्मुख हो जाने की टेव मत डालो। हजारों लाखों मनुष्यों में जैसे एक दो जादूगर होते हैं। उसी प्रकार जीव से बन्धे हुये अनन्तानन्त कर्मों में से सौ पचास कर्म-स्कन्ध ही डुग्गी बजाकर बहुत से बुद्धू लोगों में अपना सातिशय फल दिखाते हैं। शेष बहुभाग कर्म तो जीवका अकेले में ही स्वसवेद्य सुख, अज्ञान, दुःख आदि फल देते रहते हैं। हाथी के दातों के समान दिखाऊ कर्मफल न्यारे हो हैं, जो कि अत्यल्प हैं। सुना है कि अभी दो तीन वर्ष पहले हरिद्वार के कुम्भ की बात है, एक मूढ स्त्री ने गङ्गाजी के अतिशय की कल्पित मान्यता पर अपने दो

प्रिय पुत्र गङ्गा में बहाकर खो दिये, और रोती कलपती गङ्गा को कोसती हुई चली आई। श्री समन्तभद्राचार्य आप्त-मीमांसा के आदि में लिखते हैं—

देवागमनभोयान—चामरादिविभूतयः,
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान्।

कि देवोंका आगमन, आकाश में चलना, चमर-ढुलना सिंहासन आदि विभूतियां तो मायाचारियों में भी देखी जाती हैं। तथा शरीर आदि के स्वेदरहितपन आदि महान् अभ्युदय भी देखे में पाये जाते हैं। तिस कारण हे जिनेन्द्रदेव! आप महान् आत्मा नहीं माने जा सकते हैं। आत्मा या धर्मके महत्त्वाध्यायक जो अभ्यन्तर तत्त्व हैं वे अन्य ही हैं, स्वानुभव-संवद्य हैं। दैव के अनुकूल होने पर धन आदि तुच्छ फलों को तो अन्य छोटे मनुष्य भी दे सकते हैं। बढ़िया वकील या बैरिस्टर या स्वार्थी जज की प्रेरणा होनेपर मुकदमा को जीत सकते हो, किसी सेठ या राजासे अथवा अन्याय (चोरी, डाका, ब्लैक) से धन भी प्राप्त हो सकता है। औषधियों या वैद्यों करके अथवा अन्य मन्त्र, तन्त्र, आदिक प्रयोगों से पुत्र प्राप्ति की जा सकती है। रोगभी दूर किये जा सकते हैं। अनेक मिथ्यादृष्टि साधु या तांत्रिक या इतर योगी, महन्त आदि भी कितने ही कार्यों को साध देते हैं, ऐसा लोकप्रवाद है

हुआ भी हो या न हो मुझे यहां यह बताना है, कि अपत्य, वित्त, और उत्तरलोक की तृष्णाको बढ़ाने के लिये त्रिलोकेश्वर जिनेन्द्र से भीख मांगना अपनी और उनकी अप्रतिष्ठा (तौहीन) करना है, बासी रोटी के टुकड़े के लिये महान् राजा से अनुनय करना शोभा नहीं देता है।

अष्टसहस्री में लिखा है कि—"यावन्ति कार्याणि तावन्त स्वभावभेदा" किसी निवक्षित कारण से जितने कार्य हो जाते हैं वे स्वभाव और शक्तियां उस कारण में वस्तुभूत टिकी हुई हैं। मूर्ति, मन्त्र, औषधि, यन्त्र आदि से जो कार्य होते दीख रहे हैं उनके कारण ये हैं। हां धर्मात्मा पुरुष इन राग द्वेष वधक, कर्मबन्ध के प्रकरणोंमें नहीं फंसें। आत्मशुद्धि के प्रस्तावों को अपनावें।

आज कल अनेक भाई अतिशय क्षेत्रों पर ही कुछ कामना लेकर जाते हैं सिद्ध क्षेत्रोंकी वन्दना तो वे कर्मक्षय या वैराग्य का प्रयोजन रख कर ही करते हैं। लौकिक सुखों की कामना या साधना की अपेक्षा कर्मक्षय की अभिलाषा अच्छी है। इस बात को भी वे जानते हैं कि इच्छापूर्वक अतिशय क्षेत्रोंकी यात्रा करना यदि प्रवेशिकाकी परीक्षा है तो सिद्ध क्षेत्रों की भावपूर्ण वन्दना करना अंतिम आचार्य परीक्षा है। अच्छा यही सही, किन्तु भाई क्या अब तक प्रवेशिका परीक्षा में ही पड़े रहोगे? या आगेभी

सकोगे। देखो धर्म स्वयं एक स्वतन्त्र देव है, श्री अर्हन्त या सिद्धों के समान नौ देवों में एक धर्म भी देव गिनाया है अतः स्वतन्त्ररूप से धर्म आदरणीय है।

कई भोले भाले जैन भ्राता कह बैठते हैं कि हमारा चित्त धर्म में लगता ही नहीं, बताओ हम किस प्रकार निष्काम धर्म सेवन करें ? उन द्रव्य धर्मात्माओं के प्रति आचार्य महाराज ने कहा कि रात दिन पाप-पङ्क में निमग्न रहनेसे या आरम्भ परिग्रहकी तीव्र वासनाओं में लगे रहने से मिथ्यादृष्टि आत्मामें धार्मिक भाव जागृत नहीं हो पाते हैं। अधार्मिक प्रपञ्चों से ठसाठस भर रहे मस्तिष्क में धर्म्यक्रिया के लिये स्थान खाली नहीं है। एक जैन कवि ने लिखा है कि काले कम्बल पर केसर का रङ्ग नहीं चढ़ सकता है।

कलि दोष से इस युग के किसी किसी धर्मात्मा का हृदय भी निष्ठुर हो जाता है, प्रज्ञा, अज्ञान, परीषह साथ हो जाती हैं, स्वल्प निमित्त मिलतेही अनन्तानुबन्धी जागृत हो जाती है, धर्म सेवन के साथ कषायें बढ़ जाती हैं। अन्न प्राण हैं फिर भी रोग में खा लेने पर विष हो जाता है। जल जीवन है वही विकृत होकर जलोदर बन जाता है। पित्त अग्नि पचाती है फिरभी ज्वर, जीर्णज्वर (दिक) बन बैठती है। वायु प्राण है तो भी वात व्याधि, अर्धाङ्ग,

धनुर्गीत, पीडायें उपजा ढर्ती है। उनम म अव्यक्त पाप बहुत हो गए हैं। नित्य निगोदिया जीव रौन से केवली या सद्गुरु अवर्णवाद करता है। या प्रदोष निन्दन, माया वश, दान आदि करता है फिर भी आठों कर्मों को बांधता रहता है। आयु को त्रिभाग म या अन्त म बांधता है।

सन्जुरर! खून, पुंजीशायिर, लट, चोरी आदि जीवोंके व्यक्त अव्यक्त अनेक दुष्ट परिणाम होते रहते हैं। बहुत से तो समझय भी नहीं हैं। उनकी पाप करने की इच्छा भी नहीं है। पर कर दुर्लंघ्यात्मा की फटकार से दुर्भाव बन बैठते हैं। अत कतिपय परमत्त धर्मात्माओं को स-रा ठोस धार्मिक बनना चाहिए।

किसी किसी धर्मात्मा म एक दो कदाग्रह (हठ) भी लग बैठे हैं, व अनधिकार विषय म भी अपनी मनमानी चलाते हैं। कतिपय दान करने वाले अपना नाम, यश, बहुत चाहते हैं। संस्थाओं में दानी अल्पानुभवी अपनी ही टेक चलाते हैं। पठनक्रम, समय-विभाग, विद्यालयके नियम बनानेमें अपनी टांग अड़ाते हैं विद्वान् तो उनके नोकर ठहरे, उनकी चलने नहीं देते हैं। ऐसे धनिकों के चमत्कार्थ किसी किसी संस्था ने सङ्गीत का भी प्रबन्ध किया है। बस तो यह बात है कि—

काव्येन हन्यते शास्त्र तच्च गीतेन हन्यते।

गीत कामानुरागेण' सोपि रत्यतिसेवया ॥

ऐसी अनेक त्रुटियां जैनों में घुस पड़ी हैं अत. राग द्वेष को छोड़कर पावन कार्यों को करो।

प्रिय बन्धुओ ! इच्छाओं, आपको, सङ्कल्प, विकल्पों, कषायों को पुरुषार्थ द्वारा घटाओ, इन्द्रिय-लोलुपता को न्यून करो, पुनः घोर प्रयत्न कर आत्मा को स्वकर्तव्यों पर झुका दो, व्रतधारण, इन्द्रिय-विजय, कषाय निग्रह करने पर पिल पड़ो, भोगों में अनासक्ति रक्खो, तुम अवश्य धर्म मार्ग पर आरूढ हो जावोगे। मोही जीवों को अपनी दिनचर्या बदलनी पड़ेगी।

प्रात काल ब्रह्ममुहूर्त या सूर्योदयसे पहिले सीधे करवट से उठो, पञ्चपरमेष्ठी का स्मरण करो, सिद्धों का आशीर्वाद तुम्हारे सिर पर है। चौबीस तीर्थंकर और विदेह क्षेत्र के विद्यमान बीस तीर्थंकरोंका गुणगान करते हुवे नाम उच्चारण करो, पुन शारीरिक शङ्काओं से निवृत्त होकर पश्चिम मुख दन्तधावन और पूर्वमुख स्नान करके उत्तरमुख शुद्ध वस्त्र पहिनकर देव-दर्शन या देव-पूजन के लिये पवित्र जिन मंदिर को जाओ, मार्ग में यो विचार करते जाना कि यह दरिद्रता, धन-सम्पत्ति, कुटुम्ब-परिवार, सुख-दुःख, यश-अपयश, जीवन-मरण सब अर्जित कर्मों का खेल है। पचपरमेष्ठी या शुद्ध आत्मा का ध्यान करना ही उपादेय

है, मानव पर्याय पाकर स्वाभाविक धर्मोंको धारने के लिये ही सतत प्रयत्न करते रहना चाहिए। जिन मन्दिरजी में तीन बार "नि सहि" कहते हुये घुसो, देव दर्शन करके चिडचिडा और नवलेर हो रहा निकाचित बन्ध भी टूट जाता है।

श्री जिनेन्द्रदेव का दर्शन करतेही कहो कि हे नाथ! मेरा आज मनुष्य जन्म सफल हुआ, मेरे नेत्र आज सार्थक हुए, जिससे कि हे त्रिलोकी-पूज्य जिनेश्वर! मैं तुम्हारे दर्शन कर रहा हूँ मेरा मन आज निरवधि सुखी है, जिस से कि मैं आपके गुणोंका चिन्तन कर रहा हूँ। [जिनेन्द्र की विशाल, सुन्दर, शान्त मूर्तिको देखकर बड़ा आनन्द उपजता है। तेरहवें गुणस्थान में बालक, कुमार, युवा-वस्थायें हैं वृद्धापन नहीं है। तप करते कोई बूढ़ा भी हो गया होय तो बारहवें गुणस्थान के अन्त में परमौ-दारिक शरीर महत्ता से भी बढ़कर हो जाता है झुर्रियां मिट जाती हैं तीस वर्षका सा पट्ठा बन जाता है, कपोल भर जाते हैं बुढापा सर्वथा नहीं रहता। श्रवण बेलगोल (जैन बद्री) के बाहुबली की प्रतिमा ठीक उपमान है। मूछ डाढी सर्वथा नहीं, हां सिर पर बाल हैं सब अवयव भरे हुये हैं, पिलपिले सिकुड़े झुर्रे नहीं। तद्वत् सुन्दर सुडौल बालक का सा लावण्यमय पुष्पदन्त मुख हो जाता है।]

पुन श्रीजिनबिम्ब के सन्मुख शुद्धभावो से मन्त्रपूर्वक द्रव्य चढ़ाते जाओ, दो तीन कायोत्सर्ग अवश्य करना अर्थात् धीरे धीरे देर तक लिये जा रहे सत्ताईस श्वास उच्छ्वासों मे नौकार नमस्कार मन्त्रका उच्चारण करो, इससे समीकरण निधान हो जाता है उत्कट संवर होता है शब्द बोलते हुये अर्थ पर भी लक्ष्य रक्खो।

"चउ कर्मकी त्रेसठि प्रकृतिनाश, आठ पहरकी चौसठ घडिया, मन्त्र जपो नवोकार, समोशरण, आव्हानन, श्री मन्दिर, जुगमन्दिर, श्रीमन्धु, सुरमन्यु, अरह, अर्घ, अक्षत पूजों श्री जिनराज, चिन्तवन, राष्ट्रीय, आधीन, धर्मध्यान, श्रेयासनाथ, जैमी" ऐसे अशुद्ध शब्दो का उच्चारण मत करो, प्रमादवश कर्मबन्ध हो जावेगा।

हा इनके स्थान पर यथाक्रम से 'कर्मन की त्रेसठि प्रकृति नाश, आठ पहर की साठिहु घडिया, मन्त्र जपो नमोकार, समवसरण, आव्हान, सीमन्धर, युगमन्धर, श्री मनु, सुरमनु, अर, अर्घ्य, अक्षत सों पूजों जिनराज, चिंतन राष्ट्रिय, अधीन, धर्म्यध्यान, श्रेयोनाथ, जैन इन शुद्ध पदोंका उच्चारण करो।

हा कोई स्त्री होय तो वह अपने को जैनी लिखे। जैसे ब्राह्मीबाई जैनी सुन्दरी जैनी आदि। किन्तु बालक युवा, वृद्ध, पुरुषों को जैन ही लिखना चाहिए। जैसे कि

ऋषभकुमार जैन, अजितप्रसाद जैन आदि। यदि कोई पुरुष भाववेद से स्त्रीवेदी भी होय, तो भी वह कथाकार अपने को द्रव्यवेद की अपेक्षा जैन ही लिखे, पुरुषत्व या पुल्लिंगत्व को नहीं छिपावे।

हम "आज कल जैनियों की दशा ऐसी है वैसी है जैनियों में परस्पर कलह है, विद्यार्थी सुमतिप्रसाद जैनी, जिनदत्त जैनी, विशारद परीक्षा में उत्तीर्ण हुआ है" ऐसे अशुद्ध वाक्योंको सुनकर कष्ट होता है कि पुरुषार्थी, ज्ञानवान्, साक्षात् जैन भ्राता स्वयं जैन होकर जैनी लिखने में नहीं सकुचता है खेद। बहुवचन में जैनों को या जैनों में लिखो। हां जैनी वाणी, जैनीमाता, जैनीभक्ति, सुलोचना जैनी, सीता जैनी ये वाक्य शुद्ध हैं, जैनी शब्दमें स्त्रीप्रत्यय ङीप् है तद्धित का इन् नहीं। मन्त्रोंका तो अवश्य ही शुद्ध उच्चारण करो बहुत लाभ होगा। अलम्॥

यदि तुम्हारी प्रकृति में शुभराग परिणाम हैं तो मन्दिरजी में घण्टा बजाओ, ध्वजायें देखो, अष्ट प्रातिहार्यों को चितारो, समवसरण विभूतिका चिन्तन करो, जगत् के सुन्दर द्रष्टव्य माने गये खाई सरोवर कोट बगीचा, नाटकशाला रत्नपुञ्ज आदि सभी पदार्थ समवसरण में विद्यमान होते हैं ये सब वस्तुभूत हैं कल्पित या इन्द्रजाल नहीं, स्वर्ग से आवे हैं। भाषा या संस्कृतमें जिनेन्द्रकी स्तुति

पढ़ो जाप देओ, थोडा ध्यानभी करो। स्वाध्यायमें चरणानुयोग को अवश्य रक्खो अन्य अनुयोग भी श्रेयस्कर हैं।

सामायिक अवश्य करो इससे बडे जल्दी कर्म नष्ट होते हैं। हा प्रतिक्रमण भी यथायोग्य करना चाहिये किसी विद्वान् या त्यागी महाशय से सामायिक और प्रतिक्रमण की विधि सीख लो सामायिक करते समय मन में अरहन्त सिद्धों के स्वरूप, गुणों का चिन्तन करो, मन को यहा वहा मत भटकाओ। सामायिक करनेके लिये ऐसी जगह बैठो जहा चित्त के व्याक्षेप के कारण न हो सबसे अच्छी बात तो यह है कि अपने मनपर ही काबू रक्खो तुमको किसीने यह कोई ठेका नहीं दे रक्खा है कि जो कोई मंदिर जी में आवे जावे उसकी पहरेदारी करो जैसे कि निमित्त ज्ञानीके कथनानुसार एक राजा ने अपनी लडकी के लिये बलदेव वर को ढूढनेके लिये सरोवरपर दो विद्याधर नियुक्त कर दिये थे।

तुमने अपने मन को ऐसा ढीला कर रक्खा है कि जो कोई लडका आता है उसको देखने लग जाते हो, कोई स्त्री आती है तो उसके भूषण वस्त्र सौंदर्य आदिको आनखशिख निरखनेके लिये मनको उधर फेंक देते हो अपने व्यावहारिक कार्यों मे मन को ले जाते हो। मन्दिर में

कोई व्यक्ति तुम्हारी दृष्टि से ओझल नहीं हो पाता है मान् मन्दिर से निकलते ही तुम्हारी कोई परीक्षा लेनगा कि मन्दिरमे अमुक स्त्री आई थी ? कैसे कपड़े पहिने थी ? आदि। मित्रो ! अपने ध्यान मे दृढ रहो यदि कोई भाई पूछेगी तो तुम बडी शैलीके साथ कहदेना कि मैं जाप देने म सलग्न था मुझे कुछ मालूम नहीं।

थोडा ध्यान भी करो यथोचित पाच दस मिनट के लिये पहिने हुये वस्त्र और शरीर मात्र के अतिरिक्त सर्व परिग्रह का त्याग कर दो ध्यानम एकाग्र होकर पचपरमेष्ठी को चितारो आत्मगुणो पर लक्ष्य दो सिद्धपूजा की जयमाला का अर्थ विचारो, जिनेन्द्र की आज्ञा और कर्मों का फल या लोक—रचनाका चिन्तन करो शान्त मूर्तियों मन्त्रपदो समवसरण आदि का स्मरण करो शुद्ध आत्माम रमण करो।

मन्दिरजी से लौटते समय धार्मिक पुरुषों की सेवा का भाव लेते आओ—तदनुसार किसी सधर्मी को भोजन कराकर पीछे स्वय भोजन करो। खाने पीने में उचित शुद्धि रक्खो। पानी छाननेका लक्ष्य रक्खो कर्मभूमि के कुआ नदी समुद्र आस बर्फ मेन सरोवर के सभी पानी छानने योग्य है। पाच उदुम्बर गोभी मास हींग अचार मद्य मधु का सेवन न करो इन्द्रिय लोलुपता न

करो भोगोंमे आसक्ति न बढ़ाओ। थोड़ा विश्राम कर द्रव्योपार्जन के उपाय मे लग जाओ।

आजीविका करते समय अहिंसा सत्य अचौर्य अवचन संतोष से काम लो, धोखेबाजी को हृदय से निकाल दो। परोपकारी या साधर्मी भाईसे अल्प नफा लो, आदर से बैठाओ इससे वात्सल्य अङ्ग बढ़ता है। इस बातको झूठी करदो कि सर्राफ सुनार बजाज दलाल अपने मा बाप से भी नहीं चूकते हैं। जब विद्वान् या त्यागी महाशय तुम को अनर्घ्य अमूल्य तत्वों का धर्मोपदेश निःस्वार्थ देते हैं। तो क्या तुम स्वल्प भी लोभ का संवरण नहीं कर सकते हो ?। साधर्मी के साथ परोपकार के भाव जरूर रक्खो ऐसे अवसर भी भाग्यसे ही मिलते हैं। गरीब जैनों का आदर करो। यश को बढ़ाना अच्छा है। कषायों के दास मत बनो कषायेंही तुम्हारे अन्तरङ्ग शत्रु हैं। इनको पुरुषार्थ से कम करो।

देखो अजैनों मे तो जैनों के निन्दक भरपूर हैं ही किन्तु बहुत दिनो से कतिपय जैनों मे भी पण्डितों और त्यागियों की निन्दा करना रोटी-दाल हो रहा है। ऐसा किए बिना पेट या मन भरता नहीं है। उन्हों ने भले ही बजाजीमें सैकड़ों मन चरबी लगा कपड़ा बेचा हो, चांदी सोने में सराफों ने हजारों तोले तांबा गिलेट मिलाया हो,

बनियों ने हजारों मन घुने गेहूं, चावल, गल्ला हाथों से बेच दिया हो, साहूकार अन्याय-पूर्वक अनाप सनाप ब्याज खा रहे हों, मिल चला रहे हों, ब्लैकमालों ने हजारों लाखों रुपये कमाये हों, वे अभव्य मिथ्यात्व सेवन करें। ऐसे वैश्यों की कोई निन्दा नहीं करता है। पद पद पर हिंसा, असत्य, दम्भ, तीव्र कषायों से जिनका मन सना हुआ है, लोभी लखपति, करोडपति इनके सभापति बने हुये हैं। इन परीवादकों ने श्री वीरशासन को धुंधला कर दिया है। किन्तु अब युग-परिवर्तन हो रहा है, शीघ्र ही कपट व्यवहार दूर होकर या तो स्फटिकके समान स्वच्छ जैनधर्म चमकेगा अथवा जैन धर्मका स्वरूप बिगड़ कर अधर्म फैल जावेगा "जैन जयतु शासनम्"

धर्मात्मा जैनों के निन्दक को मिथ्यादृष्टि समझो। 'न धर्मो धार्मिकैर्विना' ऐसे अनन्तानुबन्धी के कार्य न करो। आप पापमय आजीविका से बचे रहो। स्व-प्रशंसा, परनिन्दा बहुत बड़ा पाप है।

अच्छा और सुनो-धर्म, अर्थ, काम को समयानुकूल और परस्पर अविरुद्ध सेवन करो, धन उपार्जन को ही पूर्ण लक्ष्यबिन्दु मत बनाओ, आय में से छठे भाग को अवश्य धर्म कार्यों में लगा देने का भाव रक्खो।

नवयुवकोंके प्रति विशेषतः यह कहना है कि मिथ्यात्व

अन्याय, अभक्ष्यका त्याग करो, शुद्ध भोजन करो, दुकान पर ताश, चौपड, मत खेलो, ठलुआ, गप्पी मनुष्यों को मत बैठने दो, शिर खोलकर मत बैठो, जिनेन्द्रोक्त अर्थ पुरुषार्थ के सेवन में विनय रखना आवश्यक है। क्वचित् शिर खोल लेना शिष्टाचार मान लिया है। किन्तु भारतवर्ष में सिर ढकना उपचार विनय है। इन्द्र, चक्रवर्ती, देव विद्याधर स्त्रिया सब पगडी, मुकुट, साफा, चादर पहिन कर जिन दर्शन करते हैं। शिरको ढके रहना विनयका कारण है, बङ्गालियों की न्यारी बात है। यदि शिर में अधिक गर्मी हो तो बाल कम रक्खो, अधिक बालों की अपेक्षा पतली टोपी लगाये रहना कहीं अच्छा है, राजवार्तिक में बालों को मलों में गिनाया है। स्त्रियों के समान बालों को काढ़ना या अन्य घना शृङ्गार करना, हसी, दिल्लगी करना, चाट, अचार खाना आदि से स्त्रीवेद का आस्रव हो जाना बतलाया है। वीर पुरुषोचित कार्य करो, धर्म, अर्थ, काम, पुरुषार्थों के करने में सत्य, विनय, शौच को पकड़े रहो। गृहस्थ के छः आवश्यक पालो, सप्तव्यसनों का त्याग करो। सट्टा बीजक आदि का व्यवसाय बुरा है, तीव्र राग-द्वेषों को बढ़ाता है इनमें वाणिज्य का लक्षण ही नहीं घटित होता है। कुछ दिनों में तीर्थ-यात्रा अवश्य करो, तीर्थोंपर शांति मिलती है। स्वच्छ वस्त्र रखनेका

भाव अवश्य रक्खो, जैन, जैन-विद्वान्, जैन-त्यागी, और मुनीश्वरों में उत्तरोत्तर निश्छद्म वात्सल्य, भक्ति-भाव बढ़ाते रहो, विश्वासघात, कृतघ्नता न करो। कृतज्ञ, विनीत बने रहो पापों से डरो। ठलुआ या दुराचारी लोगों का सङ्ग न करो, नाटक, सिनेमा, रास, नौटंकी आदि के झगड़े में मत पड़ो। स्त्रियोंको भी न पड़ने दो, सिनेमा आदि बड़े भयङ्कर हैं इनसे शारीरिक-शक्ति, उचित रुचि और ब्रह्मचर्य का घात हो जाता है। क्यों इनमें पड़कर तुम लौकिक सुखोंसे भी वञ्चित हो जाओगे। यदि बुरी आदत पड़ गई हो तो शनैः २ छोड़ दो।

व्यर्थ के अखबार, कहानियाँ, उपन्यासों में अपने मूल्यवान् मस्तिष्क की शक्तिको बरबाद मत करो, निरर्थक सङ्कल्प विकल्पोंको न उपजने दो। कल्याणदान से आत्मा मृदु होती है। सायंकाल को भी थोड़ा बहुत सामायिक करो। रातको पञ्च नमस्कार मन्त्र पढ़ो, पश्चात् जिनेन्द्र गुण स्मरण कर सो जाओ, नींद न आवे या बीच में जग जाओ तो बारह-भावनाओं का चिन्तन करो, स्तुति पाठ करो, प्रातःकाल शीघ्र उठने के भाव रक्खो। शुभ भावों से आत्मा में शुभ शक्तियाँ प्रकट होती हैं, गद्दी पर लेटे रहनेकी भावनासे तदनुसार वैसे ही गद्दीपर लेटनेवाले बीमार हो जाओगे। क्रोध मान माया लोभ ईर्ष्या-हास्य, इनको

मन्द करो। कषायों को अत्यल्प करना सबसे बड़ा धर्म है। तीव्र राग को बढ़ाने वाले और ब्रह्मचर्य को नष्ट कर देने वाले शृङ्गारी सिनेमा नाटक तमाशों को न देखने की प्रतिज्ञा कर लो, बड़े लाभ में रहोगे, चमड़े की चीजों का उपयोग न करो।

जहां तक हो अपने समय पुरुषार्थ और धनको धर्म्य-कार्यों में लगाओ, देखें फिर तुम्हारे भाव धर्म में कैसे नहीं लगते हैं, अवश्य लगेंगे। देखो आत्मामें पाप की अपेक्षा धर्म की जड़ गहरी घुस रही है। अच्छा निमित्त मिलते ही झट धर्म की बेलि हरी हो जावेगी। धार्मिक श्रावको! आप उक्त क्रियाओं को करते ही हैं, और कोई कोई भाई इस से भी दशों गुने बढ़िया धर्माचरण करते हैं। हां जो जैनकुल तथा पचेन्द्रियत्व, जिन-मन्दिर, विद्वत्सङ्गति, त्यागी-सम्बन्ध, यथेच्छ समय आदि योग्य परिकर पाकर भी आलस्य कर जाते हैं, उनके लिये मेरा यह धर्म-पालन का प्रावचन है। वे इस क्रम से छह महीने चर्या करेंगे तो अवश्य पक्के धर्मात्मा बन जावेंगे। सर्वत्र कर्मोदय को मत लगाओ सामायिक, स्वाध्याय, जाप्य, ध्यान, जिन-पूजन, परोपकार, इन्द्रियजय ये सब पुरुषार्थ से ही होते हैं।

हां एक बात यह भी सोच लो कि भैंस या गाय का

बच्चा मर जानेपर दूधके बचनेवाले घोसी नकली चमडेसे बने बच्चे को सामने रखकर भैंस, गाय को फुसला लेते है। यह दम्भ का दृश्य देखकर हम लोग कहते हैं, कि देखो ये पशु कैसे मूर्ख है जो कि नक्ली बच्चे को अपना बच्चा समझ बैठे है। परन्तु हम यह नहीं विचारते कि हम इनसे भी अधिक मोहजाल में फसे हुवे है। इसी प्रकार भोजक गन्धर्व लोग गाते है 'धन जोबन अर राज्य सम्पदा ये सब है सावन बदरा रे' इत्यादिक रूप से धन, लक्ष्मी, के औगुन बखानते है, अन्य भी दौलतराम जी के वैराग्यमय भजनों को गाते रहते हैं। साथही तत्काल किसी श्रावक को देखकर पैसा दो पैसा मागने लग जाते है, ऐसी दशा म हम उनकी हसी उड़ाते है।

भाइयो! यही अवस्था सभी मूर्च्छावान् जीवों की हो रही है। 'ज्यों शिशु नाचत पै नहीं राचत' बच्चा देखा देखी नाचता है गाता है किन्तु अन्तरङ्गसे तन्मय नहीं होता है। जैन भाई भी स्तोत्र, विनती, पूजन, कुछ बोलत रहते हैं और चञ्चल मनुआ न जाने कहाकी सैर कर रहा है। अब बोलो फल किन परिणामों के अनुसार क्या मिले ? जब कि 'मन एव मनुष्याणा कारण बन्धमोक्षयो' यह सिद्धान्त है।

जैसे भावलिंगी मुनियों से द्रव्यलिंगी साधुओं की

सख्या अधिक है। तद्वत् श्रावक श्राविकाओं, त्यागी, पण्डितों, श्रोताओं छात्रों, क्षुल्लकों में भी सदाभासों की सख्या विपुल है। सच्चे मुनि वे हैं जो एकबार में अन्तर्मुहूर्त से अधिक निद्रा नहीं लेते हैं जगकर झट सातवें गुणस्थान मे ध्यानारूढ हो जाते हैं। यदि मुनि चल रहे हैं उपदेश दे रहे हैं भोजन कर रहे हैं तो आधा घण्टा पीछे पाच मिनट स्थिर ध्यान अवश्य कर लें, क्योंकि छठे सातवें गुणस्थान का काल अन्तर्मुहूर्त है। सातवें से छठे का दूना है मुनित्व छोडकर चौथे में आ जाय तो न्यारी बात है। इसी प्रकार श्रावकभी अनन्तानुबन्धी, अप्रत्याख्यानावरण क्रोधमान माया लोभ का उदय न आने देवें, प्रशम, संवेग अनुकम्पा आस्तिक्य रक्खें। राग-द्वेष अल्प करें अभक्ष्य त्यागें सन्तोष दया दान पूजनका लक्ष्य धारें दूसरों की निन्दा घृणा नहीं करें। इससे अन्यथा प्रवर्तने वाला श्रावकाभास है। सत्यार्थी वाणिज्य परोपकार दान पूजन सभा-प्रदर्शन भोजन का आदर किसीकी प्रशसा करना धनिकचाटुकार परस्त्री को न देखना ध्यान मुनि-भक्ति समवेदना दिखलाना इत्यादिक लौकिक पारलौकिक आचार विचारों में भी द्रव्यलिङ्ग भावलिङ्ग के दुर्वृत्त चिपट बैठे हैं। यह कपट काठ की कसैंडी कब तक चलेगी?

प्रतिक्षण किसी न किसी वस्तु की वाञ्छा रखने

वाले भाइयो ! आपने पुण्य सचय किया भी यहा है ? आज भी कोई कोई ज्योतिषी या खण्ड-अष्टाग निमित्त ज्ञानी यह बता सकते हैं कि पानी बरसेगा या नहीं बरसेगा धन किस स्थान पर गड़ा हुवा है। चांदी सोना गेंहू रुई अलसी आदि तेज या मन्दे जायेंगे अमुक मुहूर्त में यात्रा करने से लाभ होगा चोरी गई वस्तु इस दिशा मे है। इत्यादि सब कुछ होते हुव भी आप एक पुण्य विना लाभ नहीं उठा सकते हैं बाह्यजन भी कह देते हैं कि 'सकल पदार्थ या जग मांही पुण्य हीन नर पावत नाहीं' किसी २ घरमे दस-बीस पीढ़ीसे धन गड़ा रहता है दरिद्री उस मकान म दु ख भोगता रहता है मकान की बिक्री करते ही नींव खोदते समय क्रेता को धन मिल जाता है क्वचित् तो धन बता देने पर भी नहीं मिल पाया है अब भी इस वसुन्धरा में लाखो स्थानों पर पुष्कल-धन गड़ा हुआ है जिसके भाग्य म बदा होगा उसीको मिलेगा। धन्यकुमार चरित्र को पढ़ो।

जैनगुरु पद पद पर उपदेश देते हैं कि इच्छाओं को कम करो पुण्य-अनुसार होने वाले धन पुत्र आदि सब परिग्रह जैनी तपस्या र विरोधी है। जैनो का अन्तिम लक्ष्य यदि मूर्च्छा म फस जाना होता तो तीर्थंकर इस परिग्रह का त्याग नहीं करते। जब कि जैनों की अपेक्षा

अजैनों के पास आपकी चाहने योग्य चीजें बहुत हैं तब जैन-धर्मके साथ उन परिग्रहोंकी प्राप्ति का कार्य कारण भाव तो नहीं रहा। देखिये पारसी, भाटिया, मार्गर, बोहरे आदि जातियों में धन अधिक पाया जाता है यवन आर्यसमाजी ईसाईजनो मे विवाह अधिक होते हैं अनेक अर्गलों के न होने से सन्तान भी बहुत पाई जाती है। प्रत्युत सम्राट, बादशाह, वाइसराय, गवनर, राजा, राष्ट्रपति, हाईकोर्ट के जज, महासचिव अन्य बडे २ अफसर, हाकिम बढ़िया वकील बैरिष्टर, महाविद्वान्, चानसलर, वाइसचासलर कमाण्डरइन्चीफ कमिश्नर, डी-आई-जी, आई जी, महामहोपाध्याय इत्यादि उच्चपद भी आज किसी जैन को प्राप्त नहीं है। अपितु जैनोंमे प्रकाण्ड देशनेता, वैज्ञानिक, व्यापारी, प्रकृष्ट वैयाकरण, ज्योतिर्विद्, मान्त्रिक-तान्त्रिक, वक्ता, लेखक, अभिनेता, गणितज्ञ, पोत-वणिक्, स्थपति, मल्ल, विद्युद्विमानयान निर्माता, अर्थशास्त्रज्ञ, अभिरूप, उद्भट-धनाढ्य, कलावित् इत्यादि वर्तमान मे कोई उच्च कोटि का नहीं है। छुट-पुञ्जियाओं को कौन पूछे ? तो फिर आप जैन-धर्म की शक्ति से छोटे छोटे मुकद्दमा जीतना या तुच्छ वस्तुओं की प्राप्ति के लिये जिनेन्द्र से क्यों प्राथना करते हो ?

श्री जिनेन्द्रने तो यह दुकान पहलेसे ही उठा दी है। सर्राफ की दुकान से बन्दूक मोल लेना चाहते हो जिस कषाय

या स्वभाव का जो जीव होता है उसका वैसे स्वभाववान् या तादृश स्वभाव वाले से मेल खा जाता है। श्री जिनेंद्र या उनके अनुयायी जैनोंके यहां अब केवल महा-महिमान्वित सदाचार आत्म विशुद्धि, संवर, निर्जरा, सम्यग्दर्शन, मोक्ष-मार्ग ही पाया जाता है। मात्र इनका क्रय-विक्रय करो। हय उच्छिष्ट दु ख-सम्पादक परिग्रहों का नहीं। वर्तमान में पुण्य-पाप का फल यथायोग्य होता रहने दो इष्ट अनिष्ट बुद्धि मत करो। जब कि धर्म सेवनके निमित्त न मतिक भावका प्रवाह दूसर ढङ्ग से बह रहा है फिर आप यह अज्ञता क्यों कर रहे हो लात मारो क्षणिक बहिरङ्ग विभूतियों पर, तथा साथ ही नाश कर दो उनके कारण राग द्वेष विभावों का। धर्म परिपूर्ण स्वतन्त्रता को प्राप्त कर लेने का यही मूलमन्त्र है। हां एक बात है कि अतिशय क्षेत्रों पर अनेक देव-देवियां दर्शन पूजन करने आते हैं। किसी जिनेन्द्र-गुण वत्सल देवने आपका कार्य भी बना दिया यह उचित है। जैसे

समन्तभद्रका मनोरथ पूर्णकर दिया
श्री महावीर जी की स्तुति से
पड़ जाय फि [illegible] मध
और सर्व व्या [illegible] ये नियम
हजारों [illegible] मन

रहे हैं। यदि ऐसे ही ऐरे गैरे सब का कार्य बन जाये तब तो लन्दन, न्यूयार्क, बर्लिन, पेकिङ्ग, टोकियो, सिंगापुर, पैरिस, कोलम्बो, मुम्बई कलकत्ता, देहली आदि नगरों जैसी भीड उन्हीं अतिशयक्षेत्रों पर लग जाती। कष्ट निवारण चाहने वाले या आशावान् स्वार्थीजन करोडों अरबों विद्यमान हैं कोई दरिद्र, रोगी, अल्पायु' अपुत्र, आजीविकाहीन, विजित, मूर्ख रहने ही न पावे, सभी जीव सम्पन्न, नीरोग, बलाढ्य, ज्ञानवान् यशस्वी, विजेता, परीक्षोत्तीर्ण बन जावें। आर्य-समाजियों द्वारा सर्वज्ञ, सर्व-शक्तिमान और दयालु माने गये ईश्वर का निराकरण करने वाले जैन विद्वान् इन युक्तियों का प्रयोग करते हैं। खेद, बन्धुओ! आत्म-कल्याण की ओर झुको निस्तत्त्व और त्याज्य अतिशयों का व्यामोह छोडो।

जिनेन्द्र की भक्ति से शुभ शुद्धोपयोगों को खरीदो। यदि फिर भी विभूतिया तुम्हारे मन मे बसी हुई है तो वीतराग की भक्ति का दम्भ छोडो, रागी-द्वेषी देवों की उपासना करो। नामजैन या कपटधारी जैन बनकर अनन्त-ससार को बढ़ाना उचित नहीं है। कुसङ्ग में पडकर कुछ काल से जैनों म भ्रष्ट-जैनत्व आ घुसा है। उसका परिहार शीघ्र करदो। पीब (मवाद) जितनी जल्दी निकाल दिया जाय उतना ही अच्छा है। तमाशा देखने की इल्लत

छोडो। कितने ही मतिमन्द कुत्सार न जाने की शर्त पर ही धर्म छोडने को तैय्यार हो जावेंगे आज पचास रुपये मासिक नौकरी लग जानेकी होड पर अन्य धर्मोंमें खिसकने के लिये तैयार हैं। हजारों लोग केवल विवाह या आजीविका व लोभ से विधर्मी बन चुके हैं। क्या पूछते हो? अज्ञानी, मोहीजीव, जो कुछ कर बैठे वही थोडा है। एक पाप का दरवाजा खुलते ही सनातन सदश अनेक पाप घुस आते हैं।

आसक्त जीवो! तुम भक्ति करना भी क्या जानते हो? श्री समन्तभद्राचार्य के वृहत् स्वयम्भू स्तोत्र को पढ़ो इनको रत्तीभरभी विषयों सुखोंकी आकांक्षा नहीं है। सच्ची भक्ति यह है जो कि स्वल्प मन्त्रों में मोक्ष की प्राप्ति करा देती है। भक्तामर, कल्याण मन्दिर स्तोत्रोंके भक्तिरस पूर प्रवाहित पद्योंकी उत्प्रेक्षायें, समासोक्ति, रूपक, ध्वनि, रस, अलङ्कार, आदि मन्त्रों पर गहरी दृष्टि डालो फिर अपनी स्वार्थ पूर्ण नीरस भक्त्याभास की नि सारता जान सकोगे। कल्याणमन्दिर में लिखा है कि—

यद्यस्ति नाथ भवदंघ्रि-सरोरुह
भक्ते[illegible] किमपि सं[illegible]
तन्मे त्वदे[illegible]

हे भगवन् ! हम तो ये जानते हैं कि भक्ति का फल भविष्यमें कुछ होनेवाला नहीं है। वह आत्माकी तदात्मक परिणति है, जो कि तत्काल निर्मलता कर देती है। बहिरङ्ग कुछ लिया, दिया नहीं जाता है। प्रमाण का साक्षात्फल अज्ञान निवृत्ति है जैसे कि विषयी जीव को इन्द्रियों का भोग फल तत्काल सुख स्वरूप भासता है। फिर भी हे नाथ ! भक्तिका भविष्यफल यदि कुछ है तो हे शरण्य मैं भक्ति का फल यही चाहता हूं कि अगले भवों मे भी तुम्हारी शरण ही ग्रहण करता रहूं। इस रत्नत्रय से ही मुझे झटिति मोक्ष प्राप्त हो जावेगी 'मेरे न चाह कुछ और ईश रत्नत्रयनिधि दीजे मुनीश' आत्माका ही धर्म और आत्मा म ही फल प्राप्त हो गया, यों बाह्य-फल की कुछ इच्छा मत रक्खो।

इसका एक दृष्टान्त यों समझ लीजिये वैष्णवों के यहां ऐसा नियम है कि 'अहरहः सन्ध्यामुपासीत' 'नित्य-नैमित्तिके कुर्यात्प्रत्यवायजिहासया' अर्थात् सन्ध्या वन्दन प्राणायाम तर्पण, प्रोक्षण, आचमन, द्वादशाङ्ग स्पर्शन को प्रतिदिन करो, करने से फल कुछ नहीं मिलेगा, न करोगे तो पाप लगेगा। यों पापाभाव ही फल हुआ 'अकुर्वन् विहित कर्म प्रत्यवायेन लिप्यते' देखो माता-पिता अपने बच्चे को पालने शिक्षित करते हैं, मरने पर सब—स्वार्पण

कर देते हैं। इस क्रिया का फल कुछ नहीं है। यदि माता पिता अपना कर्तव्य न पालें तो अपयश या कुपात्र सन्तान-जन्य दुःख उनको अवश्य मिलेगा।

गवर्नमेन्ट म्युनिसिपैलिटी और पुलिस की नियमित धाराओं या क़ानूनों को अवश्य पालो, क़ानून के पालने से सज्जनों, पण्डितों या प्रजाजन को कोई रायबहादुर सी आई-ई, ओ-बी ई, सरनाईट, तर्क-पञ्चानन, पूज्यपाद, महामहोपाध्याय, नादीम-सिंह रायसाहबादि पदवियां सन्मान या बीस हजार पच्चासहज़ार रुपया इनाम नहीं मिल जाता है हां राजनीति (क्रिमिनल कोर्ट या सिविल कोर्ट) की धाराओं का उल्लंघन करादेने से दण्ड अवश्य प्राप्त होगा। दृष्टान्त के एक देश को पकड़ो इसी दृष्टान्त के अनुसार धर्म नहीं पालने वालों को दुष्कर्म-जन्य लौकिक पारलौकिक अनेक कष्ट भोगने पड़ेंगे। हां धर्म-पालन करने से बाह्य-फल कुछ नहीं प्राप्त होगा केवल स्व-संवेद्य अभ्यन्तर सुख और कर्मों का मजर निर्जरा हो जाना फल मिलेगा। आप धर्म पर अड़े रहो, स्वकीय प्रयत्न से कैवल्य प्राप्त कर परमात्मा बन जाओगे।

विदेह क्षेत्रों में आठ लाख अठ...

केवलज्ञानी विद्यमान हैं।

धर्मानुरागी बन्धुओ! सब

का परित्याग करो, कोई अपने पेटके लिये आवश्यक आधा सेर अन्न अथवा शीत लज्जा-निवारणार्थ स्वल्प वस्त्र के लिए तो महावीरजी से धन मागता ही नहीं। हा लडका लड़की विवाह मकान या मौज मारनेका प्रयोजन रखकर अधिक धन मागा जाता है देखो राग-द्वेषमय ये विवाह मेल मपाटा मौज मारना हवेलिया बनाना गरिष्ठ-भोजन स्वर्ण-आभूषण आदि तुम्हारे हित-स्वरूप नहीं है। ये सब आपके मोक्ष मार्ग को बिगाड देने वाले हैं।

श्री आदीश्वर महाराज ने सब कुटुम्ब विभव को लात मार दी थी उनके सुपुत्र भरत और बाहुबली ने भी परिग्रह का तृणवत् परित्याग कर दिया था आत्म-हितमें लग गये शान्तिनाथ कुंथुनाथ अरनाथ ने चक्रवर्तीपन की विभू-तियों को छोड दिया था। और लग गये स्वहित भावना मे। शातिनाथ चक्रवर्ती के राज्य करते समय असंख्यात देवोंका अधिपति इन्द्र द्वारपाल के समान छडी लिये हुवे दरवाजे पर खडा रहता था। उस नौ निधि चौदह रत्न चौरासी लाख हाथी आदि विभूतियों के त्याग का विचार कीजिये। वज्रदन्त चक्रवर्ती को वैराग्य होते ही उनके सहस्र लडकों की प्रशसा करो जिन्हों ने पिता के लाखबार आग्रह करने पर भी चढ रहे यौवन मे राज्य वैभव को एकदम छोड दिया तब चक्रवर्ती को विवश होकर छह

महीने क पोते का राज्य-तिलक करना पड़ा कतिपय पुत्रों ने तो पिता से प्रथम ही अष्टकर्म नष्ट कर दिये थे। 'नमोस्तु तेभ्य परमात्मभ्य' यह है धर्म का प्रत्यक्ष फल। ढाई हजार वर्ष पूर्व वारिषेणने भरी युवावस्थामे राजविभूति और बत्तीस सुन्दर स्त्रियों को छोड़कर वैराग्य धारण कर लिया था। पुष्पडाल के समान हम लघु जन व्यर्थमोह तृष्णा मे पड़े हुये हैं। श्री महावीर स्वामी के कहे हुये ठोस धर्म क रहस्य को समझो। अत्यधिक आनन्द प्राप्त होगा।

अन्य धर्माभासों से जैन धर्मका मार्ग ही निराला है जैनधर्मी को प्रथम से ही वीतराग देव गुरु धर्मतत्वों की श्रद्धा रखनी पड़ती है आत्मा को परद्रव्य से भिन्न जानना पडता है। आटा दाल दूध लड्डू जल आदि की तीन दिन पाच दिन आदि की मर्यादा को पालना पडता है। जैन रात्रि-भोजन त्याग पानी छानना आचार मुरब्बेका त्याग इनका विचार रखता है। जुआ माम मद्य चलित रस की आखडी रखता है। जैन धर्म मे क
स्याद्वाद आकिंचन्य नि
वैराग्य सम्वेग प्रशम
पाये जाते हैं। किसी
दुष्टों को जानसे मार दे

मे तो जिनेन्द्र भगवान् दुष्टों को मोक्ष-मार्ग मे लगा देते माने गये हैं। जैनों को ईश्वर-वाद अभीष्ट (पसन्द) नहीं है। शुद्ध आत्म-ध्यान द्वारा स्वावलम्ब से ही मुक्ति होती है। देव, गुरु निर्ग्रन्थ हैं। रागी-द्वेषी देवों के ही स्त्री सवारी, लडका, गहना, कपडा, निग्रह करना हो सकता है कृतकृत्य दिगम्बर जिनेन्द्र भगवान के नहीं।

अहिंसा उच्चकोटि की जैन-धर्म मे ही है एकेन्द्रिय जीव या चित्रलिखित, मुर्गा, मछली आदि का मारना दोष माना गया है रोग के कीटाणुओ को भी सङ्कल्प से जैन नहीं मारते हैं जब कि अन्यत्र रोगी के कीडो को मार डालने का ही लक्ष्य रखा जाता है कहा तक कहे जैन-धर्म की एकएक बात अनुपम रत्न है, अन्यत्र दुर्लभ हैं। महान् भाग्य से इस जीव ने मानव पर्याय और जैन-धर्म पाया है अत त्रियोग से धर्म-साधन मे जुटे रहियेगा।

बन्धुओ! जीवों की दया पालना भी श्रावक का मुख्य धर्म है। स्वर्गों मे नरको मे विकलत्रय जीव नहीं हैं। इनका मास-स्थानीय पदार्थ प्रासुक है वहा पानी छाना नहीं जाता है हा मध्यलोक म ये पाये जाते हैं। अत कहा बादर निगोद है? कहा विकलत्रय हैं? कहा सज्ञी, असज्ञी पचेन्द्रिय हैं? कौन योनिस्थान हैं? इन बातों का ध्यान रक्खो। अचार, मद्य, मास मर्यादा--

चलित पदार्थों का नहीं खाना पीना ये सब जीव रक्षा के लिये हैं। त्रसघात, बहुघात से बचाओ हिंसा कर देनेसे रत्नत्रय बिगड जाता है। यहां ढाई द्वीप में जितने जीवित द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय पञ्चेन्द्रिय औदारिक शरीर-धारी जीव हैं। या उनके मृत अङ्ग उपाङ्ग हड्डी, मांस, चर्म आदि अवयव हैं उनमें त्रस जीव विद्यमान हैं। असंख्याते भोगभूमियों में भलेही बाहर विचरने वाले लट चींटा भौंरा आदि विकलत्रय न पाये जांय किन्तु वहां के तिर्यच या मानवों के हड्डी, मांस, रक्तमय शरीर में त्रस अवश्य हैं। बादर निगोद भी हैं। इनका मांस या रक्त प्रासुक नहीं है। तीर्थकरके शरीर में भी गर्भ, जन्म, कुमार राज्य, तपस्या अवस्थाओं में त्रस जीव पाये जाते हैं। हां केवलज्ञान अवस्थामें नहीं हैं। आहारक शरीर, परमौदारिक शरीर, पृथ्वी अप् तेज वायु तथा देव नारकियो के शरीरोंमें न त्रस हैं, न बादर निगोद हैं। सूक्ष्म निगोद तो सब जगह ठसाठस भरा है उसकी हिंसा होती ही नहीं है। यों विकलत्रय और बादर निगोद से रहित हो रहे एकेन्द्रिय पृथ्वी जल तेज वायु कायिक सजीव धातुओं से या एकेन्द्रिय से भी रहित निर्जीव [illegible] आदि
या मुनियों की लौकिक शुद्धि [illegible]
मुनि अचित्त पदार्थ [illegible]

ष्टान की त्यागी जात है।

कर्म-भूमि की मानवी स्त्रियों के गोपनीय अवयवों में लब्ध्य-पर्याप्तक मनुष्य भी पाये जाते हैं। जो कि श्वास के अठारहवें भाग कालमें मर जाते हैं। कभी २ जिनदृष्ट अर - रव्याते वर्षों का अन्तर भी पड जाता है अर्थात् करोडों अरबों वर्षों तक कर्म-भूमि की किसी भी स्त्रीके कक्षा कुचा-वस्तनभाग, नाभि, योनि, त्रिवलि में एक भी लब्धि अपर्याप्त मनुष्य नहीं पाया जाता है—"सवज सर्वजित्"

मुनिराज के पादतल के चर्म में त्रिकलत्रय जीव हैं और मन्दिर में जडे हुये पत्थर के चैंकाओं में पृथ्वीकायिक जीव हैं। पक्केचूना, ईंट, सीमिन्टम नहीं। यह ख्याल रखना कि पृथ्वी कायिक जीव की अवगाहना घनांगुल का असंख्यातवा भाग है यानी मोटर कार के पीछे जो धूल उडती है उसके एक कणसे भी छोटी है, तब तो पाव धरते ही चरण की उष्णता से तथा कठोर पत्थर के दबाव से स्थावर त्रस हिंसा हो जाना अनिवार्य है। मुख, जीभ, तालु से, उष्ण जल, भोज्य का ससर्ग हो जाने से अथवा रगड लग जाने से यों सयमी को भी जीव-वध करनेका प्रसङ्ग आता है। ताली बजाना, चूतड टेकना, चुटकी चटका देना, चलना, बोलना आदि चेष्टाय भी सावद्य क्रियाय हैं। किन्तु प्रमाद योग न होने से पापास्रव नहीं हो पाता है या अत्यल्प होता

है। "मरदव जियदुव जीवो" "निश्चनीयचिते लोगे"। यह जैन सिद्धांत है। हां परमौदारिक शरीर और आहारक शरीर से यह दोषापत्ति नहीं है इसी ही कारण परिहार-विशुद्धि संयम वालों को भी चतुर्मास म एक स्थान पर योग धारने का नियम नहीं है।

भ्राताओ! आज कल दिखाऊ धर्म-पालन अधिक है वश क लिये धर्म-कार्यों म भी विवाद आदि क समान घुड दौड हो रही है। वीतराग भगवानके उपासक आज राग-द्वेष के पचडों में उलझ रहे हैं। एक परिचित जैन भाई ने मुझ से कहा कि पण्डित जी मैं पाचबार अभीष्ट कार्य-सिद्धि के लिये जिनेन्द्र स्मरण और भगवान की आराधना करके गया, मेरा इष्ट कार्य नहीं सधा। एकबार मैं जिन-स्मरण या नमस्कार मन्त्र बोले बिना ही चला गया तब मेरा कार्य ठीक हो गया- बोलो ऐसे धर्मसे क्या रक्खा है? मैंने उन्हें इस दृष्टिकोणसे ही बहुत समझाया कि पहले अन्तराय कर्मका तीव्र उदय था। अत कार्य नहीं बना और पीछे के कार्य मे तुम जिनेन्द्र स्मरण करके जाते तो वह कार्य और भी अधिक बढ़िया सिद्ध होता।

मित्रवर्य! कर्मों का उदय किसी को नहीं छोडता है व मेरी बात को मान गये, किन्तु ध...

क कार्य-कारण भाव म वे अन्वय...

उठाने मे नहीं चूके। पक्के धर्मात्मा होते तो ऐसी छोटी बात मन पर कभी न लाते, मातर्गागर फिर महावीर का नाम लेकर गये तब मर्वोत्कृष्ट-कार्य सम्पन्न हो जाने पर वे सन्तुष्ट हुये। भाइयो! धर्म इतना कठिन नहीं है कि जितना हम लोगोंने हौवा मान रखा है। विषय-वासना म फसे रहने के कारण कठिन प्रतीत हो रहा है। आपको जब धर्माचरणका आनन्द आ जायेगा, तो आप लौकिक झझटों मे उलझने पर भी नहीं लगोगे, समाधितन्त्र मे लिखा है कि—

व्यवहारे सुषुप्तो य, स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

भावार्थ—जो खाना, कमाना, विनाद करना, भोग, उपभोग, उद्यान-क्रीडा प्रयोग करना आदि व्यवहार के कार्यों मे सो रहा है वह आत्मा के विषय म खूब जग रहा है और जो बहिरङ्ग व्यवहार प्रकरणों मे जागृत है वह बहु-आरम्भी जन आत्मीय धर्म-कार्यों मे गाढी नींद ले रहा है।

जैन भ्राताओ! आप धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो पुण्यबन्ध से सम्वर अनन्तगुणा बढिया है, कहा ससार मार्ग और कहा मोक्ष मार्ग? शून्य से एक अङ्क को कितना गुणा बडा कहा जाय। आपके प्रधान 'दर्शन'

है। "मरदुव जियदुव जीवो" "निश्चजीवचिले लोवे" । यह जैन सिद्धात है। हा परमोदारिक शरीर और आहारक शरीर से यह दोषापत्ति नहीं है इसी ही कारण परिहार-विशुद्धि सयम वालों को भी चतुर्मास में एक स्थान पर योग धारने का नियम नहीं है ।

भ्रातायो ! आज कल दिखाऊ धर्म-पालन अधिक है यश के लिये धर्म-कार्यों मे भी विवाह आदि के समान घुड दौड हो रही हैं । वीतराग भगवानके उपासक आज राग-द्वेष के पचडो मे उलझ रहे हैं । एक परिचित जैन भाई ने मुझ से कहा कि पण्डित जी मैं पाचबार अभीष्ट कार्य-सिद्धि के लिये जिनेन्द्र स्मरण और भगवान की आराधना करके गया, मेरा इष्ट कार्य नहीं सधा । एकबार मैं जिन-स्मरण या नमस्कार मन्त्र बोले बिना ही चला गया तब मेरा कार्य ठीक हो गया- बोलो ऐसे धर्ममे क्या रक्खा है ? । मैंने उन्हें इस दृष्टिकोणसे ही बहुत समझाया कि पहले अन्तराय कर्मका तीव्र उदय था । अत कार्य नहीं बना और पीछे के कार्य मे तुम जिनेन्द्र स्मरण करके जाते तो वह कार्य और भी अधिक बढ़िया सिद्ध होता ।

मित्रवर्य ! कर्मों का उदय किसी को नहीं छोड़ता है वे मेरी बात को मान गये, किन्तु धर्म और कार्य-सिद्धि के कार्य-कारण भाव म वे अन्वय व्यतिरेक व्यभिचार

उठाने में नहीं चूके। पक्के धर्मात्मा होते तो ऐसी छोटी बात मन पर कभी न लाते, सातवींवार फिर महावीर का नाम लेकर गये तब सर्वोत्कृष्ट-कार्य सम्पन्न हो जाने पर वे सन्तुष्ट हुये। भाइयो! धर्म इतना कठिन नहीं है कि जितना हम लोगोंने हौआ मान रखा है। विषय-वासना में फसे रहने के कारण कठिन प्रतीत हो रहा है। आपको जब धर्माचरणका आनन्द आ जायेगा, तो आप लौकिक झंझटों में उलझने पर भी नहीं लगोगे, समाधितन्त्र में लिखा है कि—

व्यवहारे सुषुप्तो य, स जागर्त्यात्मगोचरे।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥७८॥

भावार्थ—जो खाना, कमाना, विवाद करना, भोग, उपभोग, उद्यान-क्रीडा प्रयोग करना आदि व्यवहार के कार्यों में सो रहा है वह आत्मा के विषय में खूब जग रहा है और जो बहिरङ्ग व्यवहार प्रकरणों में जागृत है वह बहु-आरम्भी जन आत्मीय धर्म-कार्यों में गाढी नींद ले रहा है।

जैन भ्राताओ! आप धर्म शास्त्रों का अध्ययन करो पुण्यबन्ध से सम्वर अनन्तगुणा बढिया है, कहा संसार मार्ग और कहा मोक्ष मार्ग? शून्य से एक अङ्क को कितना गुणा बडा कहा जाय। आपके प्रधान 'दर्शन' तत्त्वार्थाधिगम में सबरकी बडीभारी प्रतिष्ठा मानी है तथा

सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र स्वरूप धर्म द्वारा "सम्यग्दृष्टि-श्रावकविरतानन्तवियोजक" इत्यादि सूत्र से दस स्थानोंमें असंख्यात गुणा कर्मनिर्जरा का होना बतलाया है। पुनः "सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्ष-मार्गः" इस सूत्रानुसार संवर और निर्जरा हो जाने पर मोक्ष की प्राप्ति अनिवार्य है। इससे अधिक और धर्म से आप क्या चाहते हैं? त्यागी लोग तो पुण्यबन्ध को पसन्द नहीं करते हैं।

मैं ने एक बार अतिवृद्ध त्यागी प्रभुदयाल जी से बातों बातों में यों कह दिया, कि त्यागी जी आप तो मर-कर स्वर्ग ही जायगे, एक भवतारी लौकान्तिक हो जाना तो कठिन है। वहां आप को अनेक भोग भोगने पड़ेंगे, कतिपय देवाङ्गनायें मिलेंगी। औरभी मैंने स्वर्ग की विभूति का या सैर सपाटा करने का अभिराम वर्णन किया। उस महिमा को सुनकर उन्हों ने नाक, मुंह इतना सिकोड़ा जितना कि एक दम दो तोला लाल मिर्च खा जाने पर भी नाक, मुंह नहीं सिकोड़ा जाता है। वे बड़ी कातर अरुचिपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देर तक देखते रहे और कहने लगे, कि पण्डित जी हम इन झंझटों का सर्वथा नहीं चाहते। कहां यह वैराग्य और कहां वह शृंगार।

श्री समन्तभद्राचार्य, अकलङ्क देव, नेमिचन्द्र सिद्धा-न्त चक्रवर्ती, वट्टकेर जिनसेन आदि महान् आचार्य कहां

गये और स्वर्गों मे आज कल क्या कर रहे है ? लौकिक मौज भोग रहे है। इनमे से कोई तो निकट मे मोक्ष जाने वाले है।

"अट्ठ हरी णव पडिहरि चक्कि चउक्क वहेय वलभद्दो।
सेडिय समन्तभद्दो तित्थयरा होन्ति णियमेण"।

त्रिलोकसार मे सात्यकि पुत्र महादेव को भविष्य चौबीसी म अन्तिम तीर्थङ्कर (अनन्त वीर्य) हो जाना कहा है। ये तीर्थङ्कर पूर्व जन्मों मे असख्य जीवों का उद्धार हो जाने की भावनायें भाते हैं। ये वैमानिक देवो से आते है या प्रथम द्वितीय तृतीय नरक से भी आते है नरको मे छ' मास प्रथम इनका दु ख–निवारण हो जाता है स्वर्गों मे इनकी माला नहीं मुरझाती है कान्ति और आज्ञा का भङ्ग नहीं होताहै

कर्मों को जीतने वाले जिनेन्द्र के भक्तपुरुषो! आप अपना ध्येय उच्च बनाइये इस निकृष्ट पचम कलि काल म हम हीन सहनन, अल्पज्ञानी, सयमहीन, जीव क्या भक्ति कर सकते हैं? क्या भाव लगाओगे? और आप द्रव्य भी कितना चढाओगे? थोडासा द्वादशाग-वेत्ता सौधर्मइन्द्र की सरागभक्ति पर लक्ष्य दीजिये, जो कि सहस्रनाम या अन्य स्तोत्रों द्वारा भगवान की भक्ति मे तन्मय हो जाता है, मणियो मोतियों से भरे थाल चढ़ाता है एक साथ १२॥ करोड बाजों के साथ जिनेन्द्र भक्ति के गीत गाता

हैं उनकी आज्ञा से अनेक दसियों व अखाडे नाचते हैं मृदंग पर थप बना कर पुनः शीघ्र पाचों मेरुओं की वन्दना कर मुरज पर दूसरा शब्द किट् बजाता है। इन्द्राणी भी नृत्य करती हुई भगवान् के गुणानुवाद गाती हैं। ये इन्द्र, इन्द्राणी, कोई पुत्र, धन, मुकद्दमा जीतना, आजीविका लग जाना आदि की चाह नहीं रखते हैं निःस्वार्थ हो कर जिनेन्द्र भक्ति द्वारा सम्यग्दर्शन को पुष्ट करते हैं। मात्र मुक्ति को चाहते हैं तभी तो सौधर्म इन्द्र, इन्द्राणी, दोनों ही एक भव लेकर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं। यही महावीर पूजा का सच्चा फल है। एक इन्द्र की उम्र में चार कोटा-कोटी यानी चालीस नील इन्द्राणियां क्रम से मोक्ष चली जाती हैं तब इन्द्र नर पर्याय लेकर मुक्ति को प्राप्त करता है।

पाठकगण! कोई आश्चर्य न करें सन् १९११ में हुए दिल्ली दरबार के समय मेरी आखों देखी बात है कि जिस समय सम्राट् पंचम जार्ज महोदय ने रेलगाडी से उतर कर देहली मे स्टेशन पर पाव रक्खा, उसी समय एक सैकिन्ड में डेन्लास मन्त्रों की आवाज द्वारा बादशाही सलामी दीगई, साथ ही अनेक तोपों के गगन-भेदी शब्दो द्वारा इन्द्रप्रस्थ व्याप्त होगया था हजारों बाजे एक साथ बजे थे। सम्राट् के दरबार में आते ही छह सौ देशी

राजाओं और ५४ लाख दर्शकों ने युगपत् विनयक्रिया की थी। शासन द्वारा स्वायतीकरण (कन्ट्रोल) अच्छा होना चाहिये इससे भी अधिक बन्दूकों, तोपों या बाजों के शब्द एकक्षण में किये कराये जा सकते हैं।

इन्द्र के असंख्य देवों पर हो रहे शासन की तो महिमा ही नहीं कही जा सकती है। इन्द्र के साथ तेईस कल्प वासी इन्द्र, चालीस भवन-वासी इन्द्र, बत्तीस व्यन्तर इन्द्र, तथा असंख्य ज्योतिष्क इन्द्र तथा इनका परिवार असंख्यातासंख्यात ये सब एक साथ पचाग नमस्कार, अष्टाग प्रणति, सिर पर हस्त-कुड्मल लगाना आदि क्रियायें करते हैं। पूजन का पद्य बोलते ही जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, मुक्ताफल आदि को सब युगपद् चढाते हैं। मोतियो, मणियों के थाल भर भर के चढ़ाये जाते हैं।

हम चार, सोलह, चौसठ आदमी मिलकर पूजन करते हैं, चारों ओर वेदिया बना कर ठाठ से विधान रचते हैं तब ही बडा आनन्द आता है, बहु मुखपूजन म तो भारी आल्हाद होता होगा, अष्टान्हिका पर्व म किसी प्रकार चारों निकायो की असख्य टनिया देव दो २ पहर चारों ओर के क्रम से नन्दीश्वर द्वीप म जाकर जिनार्चन करते हैं। उस समुदित पूजन क आनन्द को एक चर्म जिह्वा से नहीं कहा जा सकता है। हमने महारनपुर मे

रमजान के अवसर पर अन्तिम शुक्रवार को जुम्मामस्जिद के सामने अस्सी हजार मुसलमानों की युगपत् नमना, उठना, पुन अर्द्धनम होना, हाथों को छाती से लगाना, घोटुओं से चुपटाना, कान छूना आदि क्रियाय एक साथ होती देखी है। अब आप भवन्य देव, देवियों की भक्ति चेष्टा का अनुमान कर लीजियेगा। हम आप भी असख्य-वार देव देवियों की पर्याय म इस आनन्द को लूट चुके हैं। हा भाव भक्ति नहीं कर सके अन्यथा भव भ्रमण म क्यों रुलते अनन्तवार मुनिलिङ्ग धारण कर उपरिम ग्रैवेयक तक जा चुके हैं।

यह बात अवश्य है कि मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि देवों की अपेक्षा श्रावक या मुनियों की जिनभक्ति बढ़िया है वह बढ़ियापन रत्नत्रय की शुद्धि का ही पकड़ा जायेगा अन्य रागद्वेषमय कामनाओं का नहीं। कोई २ वीतरागी मुख्य पुरुष धरणेन्द्र, पद्मावती, चक्रेश्वरी, ज्वालामालिनी के आराधन, कल्प या साधना म भी अनुराग करते हैं और कुछ लौकिक प्रयोजनों को साध भी लेते हैं किन्तु ये सब दुधारी तलवार हैं, इनकी सिद्धि मे अखण्ड ब्रह्मचर्य की आवश्यकता है। निष्णात गुरुओं का सत्सग चाहिये। पहिले भट्टारकों ने मन्त्रों की शक्ति से जैन धर्म की प्रभावना की थी। यदि व ब्रह्मचारी, जितेन्द्रिय,

परमविद्वान् भट्टारक मन्त्र, तन्त्र शक्तियों से काम न लेते तो स्यात ही जैन धर्म का अनुयायी आज भारतवर्ष में कोई दृष्टिगोचर होता । यन्त्र, तन्त्र, मन्त्रों में भारी शक्ति है । देव भी अनेक कार्यों को साध सकते हैं इसका मैं निषेध नहीं करता हूं । वात्सल्य और प्रभावना के लिये उक्त कार्य प्रशस्त है ।

जगत् में सभी प्रकार के मनुष्य हैं । परन्तु मुमुक्षु पुरुषों को उच्चाटन, वशीकरण, स्तम्भन, मारण मन्त्रों के प्रसंग में तो कथमपि नहीं पड़ना चाहिये । ये तो सर्वथा निषिद्ध हैं ही । हां काम्य मन्त्र भी रागवर्द्धक होने से हेय माने गये हैं । भव्यजीवो ! पंचनमस्कार मंत्र का ही आराधन करते जावो । शुद्धमन से निष्काम होकर अपराजित मंत्र को जपा जाय, यह बड़ा भारी पुरुषार्थ है । नमस्कार मंत्र की स्तुति करते हुये कहा गया है कि—

"आकृष्टिं सुरसम्पदां विदधते मुक्तिश्रियो वश्यता-
मुच्चाटं, विपदां चतुर्गति-भुवां विद्वेषमात्मैनसाम् ।
स्तम्भं दुर्गमनं प्रति प्रयततो मोहस्य सम्मोहनं,
पायात्पंच-नमस्क्रियाक्षर-मयी साराधना देवता ॥

भावार्थ—नमस्कार मंत्र ही आराधना करने योग्य देवता है बस कर्म क्षय का लक्ष्य रक्खो । श्रावक धर्म या मुनि-धर्म का पालकर मात्र सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और

सम्यक्चारित्र रूप आत्मविशुद्धि को बढ़ाने का प्रयोजन रक्खो, अन्य सब प्रयोजन रही है वे प्रयोजन बन्ध के कार्य और बन्ध के ही कारण हैं। आत्म स्वरूप रत्नत्रय से बन्ध कथमपि नहीं होता है। अमृतचन्द्राचार्य ने पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें लिखा है —

"येनांशेन सुदृष्टिस्तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥२१२॥
येनांशेन ज्ञानं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥२१३॥
येनांशेन चरित्रं तेनांशेनास्य बन्धनं नास्ति,
येनांशेन तु रागस्तेनांशेनास्य बन्धनं भवति॥२१४॥

भावार्थ — यह है कि रत्नत्रयस्वरूप धर्मसे पुण्य और पाप किसी का बन्ध नहीं होता है। बन्ध तो रागद्वेषों से होता है "मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः" "जोगा पयडिपदेसा ठिदि अणुभागा कसायदो होन्ति" कषाय और योगों के साथ कर्मबन्ध हो जाने का अन्वयव्यतिरेक है। समन्तभद्राचार्य ने कहा है नाज्ञानाद्ध्रौव्यं मोहत फिर ज्ञानसे तो बन्ध क्या होगा मोहरहित अज्ञान से भी बन्ध होने का निषेध किया है। सम्यग्दर्शन चारित्र, तो कर्म बन्ध के प्रधान शत्रु हैं। सम्यग्दर्शन होने के पूर्व ही से सातिशय मिथ्यादृष्टि को अपूर्वकरण

अवस्था से ही कर्मों की असख्यात गुणी निर्जरा, स्थिति-काण्डकघात और अनुभागकाण्डकघात, गुण सक्रमण, होने लग जाते हैं । सम्यग्दर्शन हो जाने पर तो कर्मों की तीव्र कटाकटी होने लगती है । सम्यक्त्व का अचिन्त्य माहात्म्य है, भावों को शुद्ध रखिये।.

क्षपक-श्रेणी मे सम्यक् चारित्र के द्वारा बडे वेग से कर्म बन्ध का नाश कर दिया जाता है । इस युद्ध मे सम्यक् चारित्रपरिणामों से हुये कर्मों के क्षय का राजवार्तिक मे बडा अच्छा प्रतिपादन किया है । रत्नत्रयात्मक पुरुषार्थों का जब हम विचार करते हैं तो उनके सन्मुख जीवों के सभी यत्न फीके मालूम होते हैं, एक मल्ल या जज जीवन भर मे जितना शारीरिक या मानसिक पुरुषार्थ करता है उनसे कई गुने पुरुषार्थ को आत्मध्यानारूढ मुनि एक क्षण मे कर डालते हैं और उसी प्रयत्न से कर्मों का ध्वस कर मोक्ष प्राप्त कर लेते हैं । यत्न करते हुये यति को कर्म क्षय करने म भारी थकान हो जाती है अत आचार्यों ने बीच २ मे विश्राम ले लेना कह दिया है । जिन वाणी मे उक्त सम्पूर्ण सिद्धान्तो का स्पष्ट निरूपण किया गया है । अब निकृष्ट कषाय और योगो का त्याग कर समीचीन धर्म पुरुषार्थ में सलग्न हो जाना तुम्हारा काम है ।

एक ग्रामीण दृष्टान्त है कि एक आतुर तत्काल

मिवाहित पुरुष किसी ज्योतिषी पण्डित के पास जाकर पूछने लगा कि महाराज मेरे पुत्र कब होगा ? ज्योतिषी ने पंचाग देखकर कह दिया कि तुम्हारे दो वर्ष पश्चात् पुत्र जन्म होगा, बस घर आते ही वह पुत्र के लिये धन उपार्जन की आवश्यकता का अनुभव कर देशान्तर को चला गया। दो वर्ष में पुष्कल धन पैदा कर घर लौटा, स्त्री से पूछा कि लड़का कहा है ? वह बेचारी लज्जावश चुप हो गई, दौड़ा हुआ ज्योतिषी के पास गया और फटकारने लगा कि तुमने दो वर्ष पीछे लडका होना कहा था मैं उसी दिन देशान्तर को धन कमाने चला गया था आज आया हू किन्तु अभी तक लडका नहीं हुआ, तुम्हारा शास्त्र झूठा है। पण्डितजीने टका सा उत्तर दिया कि तुम हमारी बात पर ही रहे कि उस के लिये गांठ का कुछ पुरुषार्थ भी किया, भाई पुरुषार्थ बिना दैव और दैव बिना पुरुषार्थ बेचारे क्या करें ? दो का योग है।

रत्नत्रय के तीनो गुण एक से हैं फिर भी इस युग के जैनों म निश्चय सम्यक्त्व और ज्ञान का इतना आदर नहीं जितना कि व्यवहार चारित्र का है बेचारे तत्व ज्ञान की तो धनकमरावर भी श्लाघा नहीं। विचारक बन्धुओ जैसे "चारित्तं खलु धम्मो" अलापते हो वैसे ही दसणमूलो धम्मो, तम्हाणाण हि मुद्दरप्पा" ऐसे भी अनेक कुन्दकुन्द

वाक्य है। जैनातिरिक्त सभी सम्प्रदायों में ज्ञान का इतना निरादर नहीं 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा'। अब ठोस विद्वान् उपजना ही मन्द हुआ जाता है। विद्वान् गुरु के बिना कोरे स्वाध्यायकर्ता का ढोंग बना कर चालीस वर्ष तक पहली कक्षा के विद्यार्थी ही बने रहो अच्छे स्वाध्यायी तो सौ में पाच हैं। चारित्र-धारियों का भी ज्ञान-प्रचार में योग कम है। पण्डितजन अपनी डफली बजाये जाओ जब तक जिये तभी तक सही। आजकल जैनों को जैन विद्वान् का वेतन भी खटकता है, पण्डित ने वेतन ले लिया मानो तीसरे नरक जाने का घृणित कार्य कर दिया, क्योंकि एक लाख का माल एक रुपये में बेच दिया यह अपराध किया। जबकि अन्य सम्प्रदायोंमें ज्ञानका मूल्य सौ गुना है तब जैनो में सौवें भाग है। विशेषज्ञ जैनो और अजैनों के ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों को तोलिये तब आपको सिद्धांत मर्मज्ञ विद्वानोंकी व्युत्पत्ति का पता चलेगा। क्षत्रिय-वृत्ति के लोगों से तुलनाना, डाडी मारने वालों से नहीं। कतिपय वैश्यों को तो व्यसन व्यय, और व्यर्थ खर्च के सामने पण्डितों को रुपया देने में व्यर्थ व्यय दीख रहा है। कपट में मद भी नहीं है। यश तो गृहस्थ पण्डितों को मिलता नहीं।

देखो! तीस करोड़ वैष्णवों में दो करोड़ ब्राह्मण]

विवाहित पुरष किसी ज्योतिषी पण्डित के पास आकर पूछने लगा कि महाराज मेरे पुत्र कब होगा ? ज्योतिषी ने पंचाग देखकर कह दिया कि तुम्हारे दो वर्ष पश्चात् पुत्र जन्म होगा, बस घर आते ही वह पुत्र के लिये धन उपार्जन की आवश्यकता का अनुभव कर देशान्तर को चला गया। दो वर्ष में पुष्कल धन पैदा कर घर लौटा, स्त्री से पूछा कि लड़का कहां है ? वह बेचारी लज्जावश चुप हो गई, दौड़ा हुआ ज्योतिषी के पास गया और फटकारने लगा कि तुमने दो वर्ष पीछे लड़का होना कहा था मैं उसी दिन देशान्तर को धन कमाने चला गया था आज आया हू किन्तु अभी तक लड़का नहीं हुआ, तुम्हारा शास्त्र झूठा है। पण्डितजीने टका सा उतर दिया कि तुम हमारी बात पर ही रहे कि उस के लिये गांठ का कुछ पुरुषार्थ भी किया, भाई पुरुषार्थ बिना दैव और दैव भी बेचारे क्या करे ? दो का योग है।

रत्नत्रय के तीनो गुण एक से हैं फिर भी इस युग के जैनों में निश्चय सम्यक्त्व और ज्ञान का इतना आदर नहीं जितना कि व्यवहार चारित्र का है बेचारे तत्त्व ज्ञान की तो घनके बराबर भी श्लाघा नहीं। विचारक बन्धुओ जैसे "चारित्त खलु धम्मो" अलापते हो वैसे ही दंसणमूलो धम्मो, तम्हाणाण हि सुद्धत्था" ऐसे भी अनेक कुन्दकुन्द

चय हैं। जैनातिरिक्त सभी सम्प्रदायों म ज्ञान का इतना रादर नहीं 'जो जैसा करेगा वैसा भरेगा'। अब ठोस द्वान् उपजना ही बन्द हुआ जाता है। विद्वान् गुरु के ना कोरे स्वाध्यायकर्ता का ढोंग बना कर चालीस वर्ष क पहली कक्षा के विद्यार्थी ही बने रहो अच्छे स्वाध्या-तो सौ मे पाच हैं। चारित्र-धारियों का भी ज्ञान-प्रचार याग कम है। पण्डितजन अपनी ढपली बजाये जाओ व तक निभे तभी तक सही। आजकल जैनों को जैन द्वान् का वेतन भी खटकता है, पण्डित ने वेतन ले लिया नो तीसरे नरक जाने का घृणित कार्य कर दिया, क्योंकि क लाख का माल एक रुपये म बेच दिया यह अपराध या। जबकि अन्य सम्प्रदायोंमें ज्ञानका मूल्य सौ गुना नब जनों में मौवें भाग है। विशेषज्ञ जैनों और अजैनों ज्ञान के अविभाग प्रतिच्छेदों को तोलिये तब आपको द्वात-मर्मन विद्वानोंकी व्युत्पत्ति का पता चलेगा। क्षत्रिय-। के लोगों से तुलवाना, डाडी मारने वालों से नहीं। श्य वैश्यों को तो व्यसन व्यय, और व्यर्थ खर्च के लि पण्डितों को रुपया देने म व्यर्थ व्यय दीख रहा है। ट म मद भी नहीं हैं। यश तो गृहस्थ पण्डितों को ता नहीं।

देखा तीस करोड वैष्णवों म दो करोड़ ब्राह्मण

पण्डित हैं। दस करोड़ यवनों में चालीस लाख मौलवी हैं तभी इनमें स्वमत की अटूट श्रद्धा बनी हुई है। इन के हजारों विद्यालय, मदरसे हैं। गृहस्थ जन बड़ी भक्ति से गृहस्थ पण्डितों या मौलवियों की तन मन धन से सेवा कर स्व को कृतार्थ समझते हैं, किन्तु बीस लाख जैनों में छोटे बड़े पाच सौ पण्डित भी खटक रहे हैं। अपनी अध्यापन-आजीविका से उदास होकर वे दूसरे व्यवसायों में खमकते जा रहे हैं अतएव अपनी सन्तान को धार्मिक विद्या नहीं पढ़ा रहे हैं। अभी तो हजारों पण्डित नवीन बनें तब कहीं वैष्णव यवनों के अनुपात से जैनों में श्रद्धान, ज्ञान क्रियायें डट पावें। वस्तुतः पण्डित ही श्रद्धा (सम्यक्त्व) को स्थिर रख सकते हैं मोहरू धन नहीं। तभी तो वैष्णवों में वेदों की, ईश्वर की भारी भक्ति है। यवनों में अल्लाह श्रद्धान दीन, स्वभ्रातृत्व बहुत बढ़ा हुआ है। आज कल के वातावरण को देखकर अनुमान होता है कि धुरन्धर विद्वानों के न होने से अल्पसंख्यक समाज बहु संख्यकों में गर्क हो जायेंगे, कुछ हो भी चुके हैं। धिग् दु षमा कालरात्रिम् (विद्वद्वर्य आशाधरजी)।

जैनोंमें हजारों धन-पति हैं वे एक दो विद्वानों को अवश्य रखें जैसे कि सर सेठ हुकुमचन्द्र जी, सर सेठ भागचन्द्र जी ला० प्रद्युम्नकुमार जी कई विद्वानोंको रखते हैं। जैनों में अभी

हजारों पाठशालायें खुलने की आवश्यकता है तभी रत्नत्रय धर्म व्यापक हो सकेगा।

अच्छे जैन विद्वानों के रखने से ही धनिकों या स्थानीय पंचायत का धर्मपालन अक्षुण्ण बना रहेगा तभी सन्तान प्रतिसन्तान तक यह लक्ष्मी परम्परा अनुस्यूत रही आवेगी

'पुण्यानुसारिणी लक्ष्मी, कीर्ति दानानुसारिणी।
अभ्याससारिणी विद्या, बुद्धि: कर्मानुसारिणी॥

इस नियम को पक्का समझो। धर्म बिना ये भोग या लक्ष्मी चिरकाल तक नहीं टिक पावेंगे। इसके उदाहरणों की प्रति दिन भरमार दीख रही है।

यह श्रद्धा ज्ञान चारित्र की न्यूनता जो हो रही है उस का उत्तर दायित्व जैनों पर ही है। जो स्व का आदर नहीं करता है वही निज-वर्ग का घातक है। जैनों में कलाओं का कुछ आदर है, पाण्डित्य का नहीं। जितना बड़ा विद्वान् होगा उतना ही अधिक उसका निरादर होगा, अधिक मजूरी भी करनी पड़ेगी तब सामान्य स्थिति का गृहनिर्वाह हो सकेगा। सागारका "न्यायोपात्तधन:" प्रथम गुण है अर्थ पुरुषार्थ है, जो कमाते नहीं वे पौरुषहीन हैं अन्याय से उपार्जन भी निषिद्ध है।

अधिगत-परमार्थान् पंडितान् मावमंस्था:,
तृणमिव लघु लक्ष्मी, नैव तान् संरुणद्धि।

मधुकर- मदलेशाम्लान, - गएडस्थलानाम,
न भवति विगततु-र्योग वारणानाम ॥

भर्तृहरि-जी कि पीछे से अपने बड़े भाई श्री शुम-चन्द्राचार्य के उपदेश से पारद सिद्धि को लात मार कर दिगम्बर मुनि होगए थे। "नमोस्तु रत्नत्रयागमगुरुभ्य ।

कुछ कालिकासा भी दोष है कालकी सिद्धातप्रारचा यह है कि "दव्वपरिवट्ट रूवो जो सो कालो हवइ ववहारो" शीत, उष्ण वर्षा आदि ऋतु-परिवर्तन, नियत कालों में न्यारी २ आम, अमरूद, खट्टा, इमली, आंवला लुकाट, आलूबुखार, वेला चम्पा, रात की रानी आदि वनस्पतियों का फलना फूलना, नियत काल मे कुत्तों गधों को यौवनोन्माद आना। गेहूं, चना, मूंग आदि धान्य का नियत समयों पर ही उपजना यह सब कुछ व्यवहारकालों के कार्य हैं। काल द्वारा जीव पुद्गल पानी संसारी आत्मा वायु भूमि, जल आदि में अनेक विभाव परिणाम होते रहते हैं। कारणों के पेट में चीर कर सद्भूत शक्तियां घुस दी जाती हैं तब वे कार्यों को उत्पन्न करते हैं। बिना डाटे कौन कार्य करे। जीव पुद्गल द्रव्यों का विभिन्न परिवर्तन ही तो व्यवहार काल है। ऐसा श्री नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने कहा है। मुख्य काल के वर्तना कार्य द्वारा यह कारण द्रव्यपरिवर्तन-स्वरूप व्यवहार काल विशिष्ट

कार्यों को करता रहता है। बहुत से कार्य तो आप के ज्ञान गम्य भी नहीं है। यो इस निकृष्ट काल मे शिष्ट मानव क्लेशापन्न है। सज्जनो का अन्यद्वारा दु:खापहरण न्यून हो चला है।

भ्रातृवर ! लगे हाथ इस बातका भी निर्णय कर लो कि जैन सिद्धांतों मे कोई अतिशय ठोस कार्य कारण भाव से खाली नहीं है। मछली या वृक्ष से मनुष्य उत्पन्न होजाना ऐसे पोले कार्यकारण-भावहीन चमत्कारो को स्वीकार नही किया जाता है। बीज बिना अंकुर नही उपजता है चाहे स्वर्ग हो या नरक हो, भोग भूमि हो, मोक्ष स्थान भी हो या प्रलय हो चुका हो निमित्त नैमित्तिक भाव का भंग नहीं होना चाहिये प्रलय काल म अनेक बीज या मनुष्य स्त्री, घोडा घोडी, चूहा चूही, कबूतर कबूतरी, नौला नौली आदि जीव देशांतर मे चले जाते है पुन: आ जाते है। देव विद्याधरभी इनको ले जाते हैं गर्भज घोडा हाथी गाय, भैंस, लडका लडकी कभी माता पिता के संयोग बिना नहीं जन्म ले पाते है। तीर्थङ्कर भगवान् के गर्भ, जन्मों मे करोडो रत्नों की वर्षा होती है। लम्बी चौडी नगरी बनाई जाती है। स्वर्ग से भोज्य सामग्री, वस्त्र, भूषण आते है। केवल ज्ञान होजाने पर समवसरण बनाया जाता है। उस में कोट, खाई, जलभरी बावडिया, ध्वजायें, उपवन, रत्न-

गज, शूकर मछली सेभी मोती उपजे सुने जाते है। इनको इन्द्र अहमिंद्र नहीं बना सकता है। नकलीको कौन पूछे। ईश्वर-वाद को मत फैलाओ।

प्रिय विचार शील! दूध वाले वृक्ष भी होते हैं। कोई देव जगली गाय भैंसों से भी दूध प्राप्त कर लेता होगा। कोई अशक्य नहीं शांतिसे अवगम करो, नियत चीन योनि कुलों को न भूलो।

हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी से नीचे और निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊंचे उठ सुदर्शन मेरु से ऊपर मानव शरीर या गाय भैंस घोडे नहीं जा सकते हैं। किन्तु स्वर्गों म या भवनवासियों के यहा दूध मोती रत्न गेहूं तो यहा से ले जाये जा सकते हैं। 'असम्भवद्बाधकत्वात् सत्वसिद्धि' बाधक प्रमाण न होनेसे पदार्थका सद्भाव सिद्ध हो जाता है। यों यथार्थ सद्भूत हो रहे समवसरण जिन नगरी जिनेन्द्र पूजा द्रव्य को अपने निश्चय म रखो।

कल्प वृक्ष भी परिमित नियतचीजोंको ही देसक्ते हैं। तभी तो महापुराण म लिखा है कि कालक्रम से कुलकरों के समय कल्प वृक्षों की शक्ति मन्द पड़ गई थी। ला०- प्रद्युम्नकुमार जी के बाग में २५ वर्ष मे हमारे देखते अनेक आम्र-वृक्ष फल फूल कम देने लगे हैं। किसी पेड़ पर तो मात्र चार छ ही आम लगते हैं। इसी कारण अनेक वृक्ष

भी न पायगा। ये कार्य होय हैं नकली (बनावटी) नहीं।

अमेरिका का ६४ मंजिल का प्रासाद, कलकत्ता में हुगली नदी पर बीच में खम्भा दिये बिना ९०० सौ गज लम्बा बना पुल, या आबू के मन्दिर ये सब कारीगरों ने ही बनाये हैं किसी बाजीगर ने नहीं दिखा दिये हैं। एक महीने में बनने योग्य पुल दिल्ली दरबार का उत्सव निकालने के लिये अत्यावश्यक हो रहा था तो एक इंजीनियर ने एक दिन में बनवा दिया था। फलतः, प्रसन्न वाइसराय लार्ड हार्डिंग्ज ने उस कारीगर की बहुत बड़ी सराहना की थी। गुणों और कलाओं का आदर न करने से न जाने कितनी कलायें भारत से नष्ट हो चुकी हैं। अब पर अनुताप करते रहो। अच्छा सुनो स्वर्गों में नदी, पर्वत, शरीर, वन उपवन, अकृष्ट-पच्य धान्य, फल फूल, वृक्ष, वनस्पतिकृत, दूध-दुग्ध वास्तविक होते हैं। स्वर्गों में गाय, भैंस बकरी किन्तु अन्य जीव नहीं हैं। यहां भी पर्वतों, जंगलों में लाखों वनस्पतियां, औषधियां बिना खेत जोते बोये, अपने नियत बीजों से उपजती विनशती रहती हैं। भले ही उनका उपयोग नहीं होवे। कमठचर देव ने भगवान् पार्श्वनाथ के ऊपर पुद्गलों से बने हुये मेह, बिजली, घनघोर शब्द आदि वस्तुभूत पदार्थों से उपसर्ग किया था। क्वचित् मनुष्य-मुंड-माला, मुख से आग २ [illegible]

गन, शूकर मछली सेभी मोती उपजे सुने जाते हैं। इनको इन्द्र अहमिंद्र नहीं बना सकता है। नकलीको कौन पूछे। ईश्वर-वाद को मत फैलाओ।

प्रिय विचार शील ! दूध वाले वृक्ष भी होते हैं। कोई देव जगली गाय भैंसों से भी दूध प्राप्त कर लेता होगा। कोई अशक्य नहा शाक्तिसे अवगम करो, नियत वीज योनि कुलों को न भूलो।

हजार योजन मोटी चित्रा पृथिवी से नीचे और निन्यानवे हजार चालीस योजन ऊचे उठे सुदर्शन मेरु से ऊपर मानव शरीर या गाय भैंस घोडे नहीं जा सक्ते हैं। किन्तु स्वर्गों म या भवनवासियों के यहा दूध मोती रत्न गेहू तो यहा से ले जाये जा सक्ते हैं। 'असम्भवद्बाधकत्वात् सत्वसिद्धि' बाधक प्रमाण न होनेसे पदार्थका सद्भाव सिद्ध हो जाता है। यों यथार्थ सद्भूत हो रहे समवसरण जिन-नगरी जिनेन्द्र पूजा द्रव्य को अपने निश्चय म रखो।

कल्प वृक्ष भी परिमित नियतवीजोंको ही देसक्ते हैं। तभी तो महापुराण में लिखा है कि कालक्रम से कुलकरों-के समय कल्प वृक्षों की शक्ति मन्द पड गई थी। ला०—प्रद्युम्नकुमार जी के बाग म २५ वर्ष मे हमारे देखते अनेक आम्र-वृक्ष फल फूल कम देने लगे हैं। किमी पेड पर तो मात्र चार छ ही आम लगते हैं। इसी कारण अनेक वृक्ष

काट दिये जाते है।

गुरुवर्य न्यायवाचस्पति स्याद्वादवारिधि महाविद्वान् प० गोपालदास जी वरैया कहा करते थे कि पहिले कल्प-वृक्ष ये ही वनस्पति-कायिक आम अमरूद केला सेव नारंग नासपाती अनार के ही वृक्ष थे जो कि अनादि अनंत बीजांकुर परम्परा से जनित जन्यमान जनिष्यमाण हैं। ये ही भोग-भूमि काल में योग्य खाद्य दीपक वस्त्र बाजे घर वर्तन भूषण दे दिया करते थे सो ठीक जचता है। मेरे गुरु पं० गोपालदास जी थे इनके गुरु प० बलदेवदास जी आगरा थे इनके भी गुरु छत्रपति थे आगे की गुरुपरम्परा ज्ञात नहीं हो सकी अस्तु उद्भट पण्डित भी आदेश देसकते हैं। इन कल्प वृक्षों को प्रथम, द्वितीय, तृतीय कालों में षट्-कुलाचल के कमलों या जम्बूवृक्ष के समान पृथ्वीकायिक मान लेना पुनः चिरस्थायी रत्नमय न मानकर काल दोष से इनका क्षय स्वीकार करना असह्य क्लिष्ट कल्पना है। हां देवों के यहां अधिक से अधिक दस हजार वर्ष की उम्र वाले वनस्पति-कायिक तथा चिरकाल-स्थायी पृथ्वी कायिक दोनों जाति के कल्पवृक्ष हैं। (सुरपुष्प-वृष्टि) "मन्दारकुन्दकमलादिवनस्पतीनां पुष्पैर्यजे"।

जगत् के सभी पदार्थों में परिमित शक्तियां हैं। अम-र्यादित नहीं। चक्रवर्ती सब याचकों को किमिच्छक दान

देकर कल्पद्रुम पूजन करता है इस पूजा में आज कल की पं कल्याणक प्रतिष्ठा से भी सैकड़ों गुणा निधि मन्त्र विधान किया जाता है। यहां वाञ्छकों को योग्य देय पदार्थ ही बांटे जाते हैं चक्री अपनी स्त्रियां, साम्राज्य, चौदह रत्न, नौ निधियां नहीं दे डालता है सम्राट् इन वस्तुओं को दे भी नहीं सकता है।

विनवर! इसी प्रकार कल्पवृक्ष भी कार्य कारण भाव का अतिक्रम नहीं कर स्वयोग्य परिमित वस्तुएं देते हैं।

भोजन भाजनाङ्ग वादित्र गृह दीप भूषण वस्त्र वाहन अङ्ग आदि दस प्रकार के कल्पवृक्ष माने गये हैं। ये बने बनाये खीर कलाकंद पिस्ता की लौज मोतीपाक इमरती, मसालेदार तरकारी चाट बिस्कुट आदि, टिपनदान चाय-सैट कमेंडी कलईदार कटोरदान चमचा मुरादाबादी गिलास स्टोव आदि, ग्रामोफोन रेडियो प्यानो हारमोनियम सारङ्गी वला सितार आदि, ताजमहल होटल चीन की दीवाल नि-डला मन्दिर आबू क जैन मन्दिर अजमेर के सोनी जी की नसियां कुतुब मीनार आगरा फोर्ट चितौरगढ़ आदि, मर्करीलाइट फ्लटलाइट गैस हन्डा लालटेन फानूस आदि, ठुस्सी, नैकलैस, आर्मलेट, मोहनमाला, वैष्ट ऐवड वाच, दस्तबन्द छद, गजर, जजीर, पाजेब, अनोखे आदि, कोट, पारसी कालर, सदर, अचकन, फैल्ट कैप, कमीज, वास्कट,

अगरखा, ग्वालियरी पगडी, जोधपुरी साफा, गाधी टोपी, जरी का दामन, साडी, मिलनार, फिराक आदि, रथ चौकडी, मोटरकार, पैट्रोलवायुयान, साईकिल आदि तथा आचार्य परीक्षोत्तीर्णता, टीलिट् की पदवी सर राय बहादुर की उपाधिया, पूरे जम्बूद्वीपका साम्राज्य अपनी स्वर्ग प्राप्ति, शत्रु को नरक भेज देना, लडकी का लडका बना देना प्रभृति कर्तृदैव जन्य कार्यों को वे कल्प वृक्ष नहीं दे सकते हैं। आप इन वस्तुओ को लेने की आपक न करें। आपकी अभेप्सा व्यर्थ जायगी। हा वृक्षोचित, खाद्य, मादक पेय, भाजन, वसन, घर, भूषण आदि को प्राप्त कर सकते हैं। परोक्ष पदार्थों का विशेष अध्ययन प्रत्यक्षज्ञानियो से करें। मैं तो आगमदृष्ट या गुरु-परम्परा-श्रुत विषय को ही कह सकता हू। विशेष ज्ञानी अधिक प्रकाश डालें मुझे कोई हठ नहीं है। आगम और सद्युक्ति का लक्ष्य रखियेगा। कुतर्क, कुबोध, उपहास करना पाण्डित्यसे बहिर्भूत किया है। श्री प्रभाचन्द्र आचार्य ने तो प्रमेयकमलमार्तण्ड की आदि मे लिखा है कि—

त्यजति न विद्वान कार्यमुद्विज्य धीमान्,
खलजनपरिवृत्ते स्पर्द्धते किन्तु तेन।

खलजनों के वर्ताव से उद्वेग को प्राप्त होकर बुद्धिमान् पुरुष कार्य को छोड नहीं देता है किंतु कार्य करने की

अधिक स्पर्धा करता है।

श्री आदीश्वर महाराज के दीक्षा ले चुकने पर राज्य मांगने के लिये आये इनके साले नमि, विनमि को धरणेन्द्र ने विजयार्द्ध का राज्य दे दिया था यानी रजताद्रि के तत्कालीन छोटे २ राजाओं को धरणेन्द्रने स्वशक्ति से दबा दिया, समझा दिया, किसी गर्वित को दण्डित भी कर दिया। जैसे कि चमरन्द्र अनेक उद्दण्ट कल्कियों को वज्र आयुध से मार डालता है। यों सब राजाओं के ऊपर नमि-विनमि को दोनों श्र णियों का महाराजा बना दिया। क्या हुआ? आज भी छोटा राज्य दने मे ऐसा किया जा सकता है, किसी २ महाराजा ने किया भी है। जयपुर के महाराज माधवसिंह जी की जीवनी पढ़ो। अन्य धरणेन्द्रने जिन-भक्ति पर प्रसन्न हो कर रावण को अमोघ शक्ति बाण (खञ्जर) दे दिया। अर्थात् अनेक देवियां उसके वश म थीं। शक्ति की अधिष्ठात्री देवी को रावणके प्रहार कार्यार्थ नियुक्त कर दिया। ये सब धरणेन्द्रकी शक्ति के भीतरके काम हैं। नाग लोक का राज्य तो किसी को भी नहीं द दिया था। किसी को सौधर्म इन्द्र तो नहीं बना दिया नमि विनमि को अपने भवनों म ही ले जाता। आस्ताम्।

बन्धुओ—यह ख्याल रखना कि देव या इन्द्र सम्यग्दृष्टि इन सिंघई, सवाई सिंघई, श्रीमन्तोंसे बढ़ कर रत्नमय

विम्बों को स्वर्गीय कारीगरों से बनवा कर परमार्थ सद् द्रव्यों से जिनेन्द्र की पच-कल्याणक प्रतिष्ठायें करते हैं। सामान्य पूजन भी करते हैं। सभी देव उच्चगोत्री होते हैं। आप लोगो से देव सम्पन्न, सबल, ज्ञानी, शुद्ध हैं। सौधर्म तो द्वादशागवेत्ता है इन्द्र के परिवार के महर्द्धिक देवोंमें बृहस्पति (ज्योतिषी बृहस्पति न्यारा है) पुरोहित, गुरु, उपाध्याय सदृश देव भी गिनाये हैं। ये बडे प्रतिष्ठा-काण्ड के ज्ञाता हैं। मन्त्रविधि क्रिया करानेमे अतीव निपुण हैं। तभी तो आप प्रति दिन पूजा के अन्त मे कहते हैं कि—

"शास्त्रोक्तविधि पूजा महोत्सव सुरपती चक्री करैं,
हम सारिखे लघु पुरुष कैसे यथाविधि पूजा करैं"।

देवों करके इन्द्रध्वज पूजन भी पचकल्याणक प्रतिष्ठा पूर्वक ही सम्पन्न की जाती है। अन्यत्र भी सौवें पाच सौवें लाखवें, (लवण समुद्र के भीतर भी) चाहे जहा द्वीपों या समुद्रों म पच कल्याणक प्रतिष्ठा समारोह रचा जाता है।

आप भी तो पच कल्याणक प्रतिष्ठा करते समय किसी प्रतिष्ठाचार्य विद्वान् या प्रतिष्ठा कराने वाले धनी मे इन्द्र की स्थापना (इन्द्र प्रतिष्ठा) कर लेते हो। अन्यों को कुवेर या लौकान्तिक बना लेते हो। कन्याओ को श्री धृति-आदि छप्पन कुमारी थापते हो। स्वर्गों या भवनवासी, व्यन्तर ज्योतिषियो के यहा तो सब सामान यथार्थ (असली)

नियमान रहता है। सुमेरु पर्वत पर भगवान् का स्नपन देव ही कर सक्ते हैं। इन्द्रध्वज विम्बप्रतिष्ठा में सुमेरु गिरि पर चाहे जहां या सोलह चैत्यालयों में अथवा स्वर्ग में ही पाण्डुक शिला स्थाप कर जन्माभिषेक कर लेते हैं। फिर इन्द्र प्रतीन्द्र सामानिक द्वारा नवीन प्रतिमा घड़ाने में ही क्या आपत्ति आगई! वे प्रतिष्ठा के पीछे आगतमाइयों को लड्डू नहीं बांटते हैं। हां धार्मिक देवों का खूब स्वागत, सन्मान सत्कार करते हैं विशिष्ट चर्चायें करते हैं। अपार आनन्द मानते हैं। प्रतिष्ठित प्रतिमा की प्रतिष्ठा नहीं करते हैं किन्तु खान पर जाकर विधि विधान कर वहां से रत्न-पाषाण लाते हैं। स्वर्ग में असंख्यात योजनों लम्बे चौड़े लाखों विमान हैं। अनेक पहाड़ और खानें हैं। पश्चात् पाषाणों में मनोज्ञ प्रतिमा जी को छैनी से उकेरते हैं, तब मन्त्र प्रयोग क्रिया विधान शास्त्रोक्त करते हैं। ये सब क्रियायें परमार्थ सत् हैं।

अब आप कहो कि तुम असत्य कार्य करते हो कि इन्द्र? आज भी बीसपन्थ सम्प्रदाय के जिन मन्दिरों में भवनवासी, व्यन्तर देव देवियों की मूर्तियें स्थापित हैं। ये सब जिनशासन रक्षक देव माने गये हैं। यहां जम्बूद्वीप से असंख्याते द्वीप समुद्रों तक तिरछे चलकर परली ओर के द्वीप समुद्रों के नीचे वज्रा आदि पृथ्वियों में भवन वासि-

यों के भवन हैं। प्रत्येक भवन के मध्यवर्ती छोटे से पर्वत पर अकृत्रिम जिन मन्दिर शोभता है। ढाई द्वीप या इनसे चिपटे सैंकड़ो हजारो द्वीपों के नीचे कोई भी जिन मन्दिर नहीं है जिनकी कि उपरिम आप लोगो से अविनय हो सके। हा नरकों के उनचास इन्द्रक बिले जम्बू द्वीप के ठीक नीचे अवश्य है। यों श्रावक अपने आद्य आवश्यक कर्तव्य जिन-पूजन को करें, कराये जाओ। वस्तुत आप लोग नकल करते हैं और इन्द्र या देवता ही मुख्य असली कार्य करते हैं। इन्द्र या महर्द्धिक देव जो इन्द्रध्वज पूजन, पचकल्याणक प्रतिष्ठा, नन्दीश्वर द्वीप मे अष्टान्हिका पूजन आदि धार्मिक कृत्य करते हैं वे कोई दिखाऊ, इन्द्र-जाल, कल्पित दृष्टिबन्ध, मायाजाल, छूमन्तर नहीं हैं, किंतु परमार्थ सत् हो रहे सुकृत कृत्य हैं।

इन्द्र के समान हम आप क्या पूजन कर सकते हैं? बस मौन रखिये। देवों को जिन-पूजन का तीव्र अनुराग (शौक) है। लघु रत्नत्रय-मय जिन-पूजन को छोटा धर्म न समझना। मात्र मानव शरीर से दीक्षा, मोक्ष, जिनजन्म, मुनिदान हो जाने की शेखी पर ही मत कुप्पा हो जाओ। अन्य भी धार्मिक कृत्य अनेक हैं। नगर के महाधनी सेठ और उसके कर्जदार उसी नगर के द्विज हाइनेस की शक्ति को परखो। मदीय स्नेही बन्धुओ! सौधर्म इन्द्र बड़ी भक्ति-

चार से जिनार्चा करता है। कभी २ तो मुझे भी वैसा पंच कल्याणक करने का निदान सा हो जाता है निदान में भोगा कांक्षा रहती है यहां भोगेच्छा नहीं "दुःखक्खउ कम्मक्खउ, समाहिमरण च बोहिलाहो य" के समान सज्जाति, सद्गृहस्थत्व, पारिव्राज्य, सुरेन्द्रता, तीर्थङ्करत्व, इन परमस्थानों की भावना करना गृहस्थ का अनुचित निदान नहीं है। शुभ कामना की साधना है।

प्रतिष्ठा-विधि मे पूजन के लिये सम्यग्दृष्टि देवों को अनुचरण आवश्यक हो रहे नैवेद्य का बनाना भी कोई कठिन नहीं है। कच्चा सामान विद्यमान है। विकलत्रयों की उत्पत्ति का भय नहीं। बढ़िया पक्वान्न बना लिये जाते है। यहां भी तो अयोध्या म भगवान् की माता की सेवा श्री आदि देविया करती हैं ये भोजन, पेय, वसन, दर्पण, बीजना आदि सभी का प्रबन्ध करती है। तीर्थङ्कर की माता के आहार है निहार नहीं।

कच्ची सामग्री नगरी म है स्वर्ग से भी असली आती रहती है। कुशल देविया झट बना लेती हैं। अन्य रसोइया, भृत्य भी अनेक हैं। इन्हीं दक्ष देवियो की उपमा आप क घरो में भी किसी चतुर गृहस्थ वधू को दे दी जाती है। अत एव पट्टरानी को मुख्यतया देवी कहते है।

(सम्मति सत्य)

जलकलश के दिन भी आप इन्द्र बनाकर गाजे बाजे के साथ उछाह निकालते हैं अथवा प्रति दिन अभिषेक पूजन करते समय मुकुट लगाकर स्थापना इन्द्र बनजाते हो।

पहिले बाहुबली स्वामी की प्रतिमा सवा पांच सौ धनुष ऊंची बनी थी। उस प्रतिमा की नकल जैन-बद्रीमे व्यालीस हाथ ऊंची बनाकर की गई। पुन इन प्रतिमा जी की भी प्रतिमायें बनाकर आरा आदि मे सहर्ष पूजी जा रही हैं, यहा सहारनपुर मे भी है। यह स्थापित की स्थापना पर पुनः स्थापना चल रही है। नमन पूजन, अभिषेक, उछाह नृत्य आदि मे हम देवो की ही नकल कर रहे हैं। नकल की चकाचौंध मे असल को भूल जाते हो। सुवर्ण, मोती, सिलवर, घृत, आटा, सफेद मिर्च, साबूदाना, घड़ियों नैवेद्य दीप, पुष्प, गशलोचन, केसर, कस्तूरी, शिलाजतु शिष्टाचार आदि मे सर्वत्र नकल ने असल को छिपा दिया है। कोई २ व्यापारी तो नकल को पकडकर असल की निन्दा करने लगे हैं। धन्य हो महाशय जी!

मित्रवर्य! अभ्यन्तर की आंखें खोलकर पर्यवेक्षण कीजिये तब वस्तुतत्व प्राप्त हो जायगा। भक्त पुरुषो आज कल अहिंसा, सत्य, स्वाध्याय, ध्यान, नियम, आखड़ी, सामायिक, आकिञ्चन्य, भोगोपभोगपरिमाण विनय वैयावृत्य, व्युत्सर्ग, परीषहजय, ब्रह्मचर्य, देशव्रत, अनशन

तिरिक्त शय्यासन आदि सभी गृहस्थ धर्मों का निचोड नि-मेलमात्र भक्ति पूर्वक किया गया जिन पूजन है ।

"सुत्तादो त सम्म दरसिज्जन्त जदा ण सद्दहदि,
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी" ।
(गोम्मटसार)

आगम से पुष्ट कर देने पर भी जो हठवश श्रद्धा नहीं करता है वह मिथ्या-दृष्टि है । अत पूजन स्वाध्याय करते या ध्यान करते समय इन उपर्युक्त वस्तुओं को अन्यूनानतिरिक्त यथार्थ विचारो । और अधिक क्या कहूं ?

देव सुमेरु से ११२१ योजन दूर अस्थिर स्थिर ज्योतिश्चक्र से बचकर सामान ले आते जाते हैं ताराओं के तिरछे अन्तराल स्थान एक घटे सात कोस से लेकर हजार बडे योजन तक के हैं । इनमें से आदीश्वर भगवान् के समवसरण के लिये आवश्यक होरही अडतालीस छोटे कोस लम्बी चौडी गोल चपटी नीलमणिकी शिला देव शत्रू ऊपरसे सुलभता से आ जा सकती है । महावीर स्वामी की सभा के लिये केवल चार कोसकी शिला आवश्यक है जिस पर पूरा समवसरण देव स्थपतिया करके बनाया जाता है । विद्याधर या नारद अथवा ऋद्धि धारी मुनि भी पर्वतों, लवण जलधि जलो और ज्योतिर्विमानों से बचकर ढाई द्वीप के क्षेत्रान्तरों को आते जाते हैं ।

वैक्रियिक शरीर वाले देव स्वशरीर या अन्य भूषण, वस्त्र, खाद्य, रत्न वृष्टि, पुष्प वृष्टि, पूजन योग्य पदार्थ, वाजों आदि को ज्योतिष्क विमानों मे घुसकर भीतर से भी अक्षुण्ण ले आसक्ते है। धरणेन्द्र, चमरेन्द्र, असुर आदि देवता यहा हजारों योजन मोटी, चित्रा, वज्रा आदि ठोस पृथ्वियों के भीतर होकर सामान सहित आते जाते हैं। जैसे कि स्थूल विजली का करेन्ट नमी,उष्णता, शीतत्व बीस मकानों या लोह मय तिजोरियों के भीतर भी घुस जाते हैं। जन्म कल्याणक म एक लाख योजन का हाथी इन्द्र विमान, नृत्यकार, वादित्र आदि परिकर सभी ज्योतिष चक्र के भीतर से भी निरापद आते जाते हैं। दोनों को कोई कष्ट नहीं। जब सूक्ष्म औदारिक ही न रुकता है, न रोकता है तो वैक्रियिक शरीर-धारी देवों के सामान को कौन रोक सकता है। अवगाहनशक्तिका गम्भीर अध्ययन कीजिये। नरलोक और मानवों की सत्ताईस या उनतीस अंकप्रमाण संख्या का भी दृष्टि-कोण मे रखना क्या बात है? तीन लोक म बादर अनन्तानन्त पुद्गलों की निर्द्वन्द्व स्थिति निर्बाध हो रही है।

हा इन्द्र देव हाथी पर गोद मे बैठे बाल भगवान की इन आकारको से बाल २ नचाये रखते हैं। अधिक तर्क करने की टेव अच्छी नहीं, आगम-प्रमाण भी कोई सार

वस्तु है।

जर्मनी, रूस, अमेरिका के भीषण युद्ध या पश्चिमी पंजाब की अनातिरूर्ण पाप क्रियाओं को क्या सभी ने आंखों से देखा है? अपने सभी अङ्गों उपाङ्गों भीतरी अवयवों या बड़ी हवेली स्वनगर को ही पूर्णरीत्या जब नहीं देख सके हो तो आयर्लण्ड, भरत क्षेत्र अथवा लकड़ी के तख्ते सदृश रत्न प्रभा या तीनों लोकों की बातों को इन हीन शक्ति परोक्ष इन्द्रियों से जाननेके लिये क्यों झगड़ रहे हो।

यदि किसी अन्य की देखी और दूसरे की सुनी हुई बातों को प्रमाण मानते हो तो सर्वज्ञ देव, गणधराचार्य परम्परा-प्राप्त तत्त्वों को भी सविनय स्वीकार कर लीजियेगा। सत्यार्थ वक्ता तीर्थङ्कर-भाषित आगम पर श्रद्धान कीजिये उत्तरदायित्व आचार्यों पर धर दीजिये। अपने मोक्ष के आवश्यक परिमित तत्वार्थों का श्रद्धान कर थोड़ा सम्यग्ज्ञान बढ़ाते हुये आत्म-स्थिति द्वारा निःश्रेयस प्राप्त कर लो "कृत श्रेयोतिचचिनाम्"।

अपनी इन्द्रियों या मन से तो अनन्तवें भाग पदार्थों को भी नहीं जान सकते हो। मैं स्वयं अनेक गूढ़ प्रमेयों को पूर्णतरतया या युक्ति उदाहरणों द्वारा समझाने में अशक्य हूँ। हां इन्द्र, लौकान्तिक, अहमिन्द्र अवस्थाओं

म नहु श्रु तज्ञान प्राप्त कर आप सूक्ष्म तत्वज्ञप्ति से परितृप्त हो जायेंगे। वहा के प्राप्य कार्यों के लिये अभी से क्यों अकुला रहे हो। सतोप धैर्य से काम लो। मोक्ष के लिये सभी सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों का विवेचन आवश्यक नहीं है। त्व स. मा स को तुप माम भिन्न या "कडसि पुणुण खेनमि यों अशुद्ध बोलने वाले अत्यल्प ज्ञानी भी भाव-लिङ्गी महाव्रती ऋद्धिधारी बन गये हैं। मिथ्यात्व रहित कषाय मद होने चाहिये। "णमो अरहताण" मात्र इतना रट रहा सुभग–नामक ग्वाला मरकर सुदर्शन सेठ होकर पटना से मोक्ष गया, रुद्र ग्यारह अग नौ पूर्व पढ़ गया तो क्या हुआ ? "ज्ञानस्तोकाद्धि मोक्ष स्यात्" मोह रहित स्वल्प ज्ञानसे ही मोक्ष हो जावेगी, ऐसा समतभद्र आचार्य विधान करते हैं।

सूक्ष्म जिनोदित तत्व हेतुभि–र्नैव हन्यते,
आज्ञा सिद्धन्तु तज् ग्राह्य नान्यथावादिनो जिनाः।

यदि चाकू चुगने वाला छोकडा माता द्वारा प्रोत्साहन पाकर कालान्तर मे पक्का डाकू बन जाता है। तो निज स्वभाव ज्ञान पर निसर्गाधिकार (मौरूसी हक) रखने वाला पहिले स्वल्पज्ञानी भी पुरुषार्थ द्वारा पीछे द्वादशागवेत्ता होकर कैवल्य प्राप्त कर ही लेगा। विकासके क्रम नियत हैं।

ध्यान और ध्यातव्य

आजकल ध्यान करना सर्वोत्तम धर्मपालन है। आर्त

रौद्र तो तिर्यञ्च नरक गतिके कारण हैं। इस युगमें शुक्ल ध्यान हो नहीं सकता है हा धर्म्यध्यान विषय ही एक देश ध्याया जा सकता है। ध्यान के लिये ऐसा एकान्त स्थान उपयोगी है जहा पशु पक्षी स्त्री बालक खिलाडी भूषण खाद्यसामग्री नृत्य गीत वादित्र झगड कलह हिंसा व्यभिचार मद्यसेवन द्यूत पाप-क्रिया आरम्भ परोपरोध गाली सिंह सर्प आगन्तुक कीट आदि का प्रसंग नहीं होय। अधिक गर्मी अतिशीत भी नहीं होय तीक्ष्ण वायु आतप वर्षा के उपद्रव से रहित होय। तथा शरीरको बाधा नहीं करने वाले शुद्ध-स्थल पर सुख-पूर्वक मौन बैठकर या खड्गासन ध्यान लगावे। थोडा मुख नमाये रखे नासाग्रदृष्टि रखे दान्तों आखों को अधिक खोले भी नहीं चलाकर मीचे मीचे भी नहीं मुखको प्रसन्न रखे। नींद वा आलस राग अरति शोक काम भय हास्य ग्लानि को छोड कर ध्यान करे पाचो पापोंका त्याग करे। ध्यानके प्रथम-अनुकूल सामग्री बनाने का लक्ष्य रखे। हा ध्यान प्रारम्भ कर देने पर तो पुनः भले ही वज्रपात सिंहआक्रमण, घोर वर्षा परीषह कैसे भी उपसर्ग उपस्थित हो जायें उन को समता परिणामों से सहे भले ही सन्यासमरण हो जाय। "यो वज्रपातेपि न जातकंपिति")

ध्यान करते समय इष्ट

नहीं करो निज को निज परको पर पहिचानो। चित्त को स्थिर बनाये रखो। तपश्चरण दान और ध्यान करने में स्व-शक्ति का लक्ष्य रखो शक्ति अनुसार ही योग निरोध करो शक्ति का अतिक्रम करोगे तो मस्तिष्क हृदय और इन्द्रियों की क्षति उठाओगे। बलाढ्य नारायण कोटिशिलाको उठा लेता है किन्तु नगण्य निमित्तसे कदली-घात मरण को प्राप्त हो जाता है। इन्द्र जम्बू-द्वीप को पलट सकता है ढाई द्वीप को नहीं। अनन्तवीर्य मुनिने इन्द्रको शारीरिक बल में हरा दिया था। शक्तियां परिमित हैं। हां मन अ-धिक न लगे तो परमेष्ठीवाचक मन्त्रों की जाप्य दो अथवा पंचपरमेष्ठी के गुणों का चिन्तन या बारह भावनायें भाओ। इच्छाओं को कम करो आत्मा में आत्मा स्थिर होकर रमण करे ऐसा प्रयत्न करो। मन वचन काय की अन्यचिन्तन बोलना, चेष्टाओंको न कर द्रव्य स्वभाव का चिन्तन करो।

"एयदवियम्मि जे अत्थपज्जया वियणपज्जया चावि,
तीदाणागदभूदा तावदियं तं हवदि दव्वं"।

एक द्रव्य में जितनी अतीत अनागत वर्तमान पर्यायें हैं उतना ही नियत लम्बा चौड़ा वह अखण्ड परिपूर्ण द्रव्य है। जीव पुद्गल आदि सभी द्रव्य इन भाव अभाव शक्तियों से तदात्मक गुम्फित हो रहे हैं। 'स्वपरा-दानापोहन-व्यवस्थापाद्यं खलु वस्तुनो वस्तुत्व (राजवा-

तिक) प्रत्येक वस्तु को स्वअंशों का उपादान और परकीय अंशों का त्याग करना ही पड़ता है। सभी पदार्थों मे भाव अभाव धर्म भरपूर लद रहे हैं। चैतन्य सुख चारित्र वीर्य सम्यक्त्व रूप रस गंध स्पर्शद्रव्य गतिहेतुत्व आदि भावात्मक गुण हैं। इसी प्रकार अव्याबाध अमूर्तत्व नास्तित्व प्रागभाव ध्वंस अत्यन्ताभाव अन्योन्याभाव आदि अभावात्मक धर्म हैं।

हमारे आपके सिर पर सुद म सिंहाभाव सर्पाभाव आदि अनन्त अभाव लद रहे हैं तभी हम निरापद चैन से हैं। एक अभाव का भी तिरस्कार कर देने से उसी समय सर्प या व्याघ्र सिर पर खड़ा हो जायगा। इसी प्रकार सौ वर्ष आगे पीछे के प्रागभाव ध्वंस अभावों की उपेक्षा कर दोगे तो असंख्य पशु कीट मनुष्योंके मर कर उठ बैठने से या प्रथम जन्म ले लेने से आजकल के जीवित मनुष्यों को खाने को एक दाना और ठहरने को एक अंगुल स्थान नहीं मिलेगा। श्री समन्तभद्राचार्य ने आप्त मीमांसा मे 'कार्यद्रव्यमनादि स्यात् प्रागभावस्य निन्हव' आदि श्लोकों द्वारा इस सिद्धान्त को बहुत बढ़िया ढंग से पुष्ट कर दिया है। ध्यान मे लोक-व्यवस्था का भी चिन्तन कर सकते हो।

ध्यान यद्यपि चेतना गुण की ज्ञान   का
है तो भी ध्यान मे चारित्र गुण की

हो रही है जैसे कि कषाय और योग का मिश्र परिणाम लेश्या है। आत्मा के सम्यक्त्व, चारित्र, चेतना, सुख, वीर्य इन पाच गुणों की ही तो संसार अवस्था में विभाव परिणति हो गई है। शेष अस्तित्व, वस्तुत्व आदि गुणों की तो विशुद्ध स्वाभाविक पर्यायें हो रही हैं। शुद्ध आत्मा में चारित्र गुण की क्षमा, मार्दव, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शौच, चारित्र आदि स्वरूप स्वाभाविक सकर परिणति हो रही है। वीर्यगुण की क्षायिक दान, लाभ, बल, भोगोपभोग रूप सकर स्वभाव परिणाम है। चेतना का केवलदर्शन, केवल ज्ञान मिला हुआ परिणाम है। यो गुणो के स्वाभाविक वैभाविक एक मिश्र सकर पर्याय शक्ति-रूप से अनेक जाति के परिणमन होते रहते हैं।

जैसे हिंसा कृतघ्नता, विश्वासघात, मायाचार शिकार खेलना, व्यभिचार आदि भावरूप दोष प्रसिद्ध है ही, तद्वत् ब्रह्मचर्य, प्रतिमाधारण देवदर्शन, क्षमा, गुरु-प्रशंसा आदि गुणों का न करना भी ये अभाव रूप दोष हैं। एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवों के ऐसे गुणाभाव रूप दोषों से पापास्रव होता रहता है। भले ही ये विचार-शून्य जीव दर्शन मोहनीय के आस्रव का कारण माना गया केवली, शास्त्र, सघ का भावरूप अवर्णवाद कण्ठोक्त नहीं करें। फिर भी केवली, सघ, शास्त्र और धर्म की पूजा, स्तुति, ध्यान

न करना भी अवर्णवाद है। यों मिथ्यात्व कर्म बंधता रहता है। तत्वार्थों का श्रद्धान नहीं करना राजवार्तिक आठवें अध्याय प्रथम सूत्र की वार्तिक में मिथ्यात्व विभाव कहा गया है देख लो। इसी प्रकार अभाव रूप अविरति भी बंध का कारण नित्य-निगोदिया या एकेन्द्रियों में है ही। कषाय प्रमाद और योग तो भावस्वरूप ही विद्यमान हैं। ये भी माया लोभ करते हैं कोई वृक्ष चालाकी से कीड़ों को पकड़ लेता है धन, खाद्य, पेय की ओर जड़ें फैलाता है।

सखियों द्वारा अन्यवरों की प्रशंसा करने पर अंजना चुप रह गई अंजना ने पवनंजय की प्रशंसा नहीं की इसी अभावरूप दोषकी भित्तिपर पवनंजय कुमार आग बबूला हो गया था और अंजना को बाईस वर्ष तक पति वियोग का दु:ख सहना पड़ा। "मौनमर्धं सम्मति" ऐसा नीति वाक्य भी है।

इसी प्रकार एकेन्द्रिय में ज्ञानवानों की प्रशंसा, सत्कार पूजा, सन्मान, विनय आदि नहीं करना रूप प्रदोष, निन्हव, मात्सर्य, सदा पाये जाते हैं यों उनके ज्ञानावरण बंधता रहता है। जल वायु, पाषाण, अग्नि, वनस्पति ये एकेन्द्रिय जीव विचारे भूत या व्रतियों पर अज्ञात अनिच्छा पूर्वक मन्द अनुकम्पा और दान करते ही हैं। पंसारी टोला, धान मण्डी, तरकारी बाजार सब प्रासुक अप्रासुक एकेन्द्रियों से

भरे पडे हैं। यों उनके साता वेदनीय बंध जाता है। ये दुख भी देते हैं। पानी प्राणियोंको डुबा कर मार देता है आग जला देती है यो इनमे असाता वेदनीय का आस्रव हो जाता है। स्वनिन्दा, परप्रशसा न करने से नीच गोत्र कर्म आ जाता है। एकेन्द्रिय विकलत्रय प्राणी अनेक विघ्न भी करते हैं ये अन्तराय के आस्रवक हेतु है। श्री तत्वार्थ सूत्र छठे अध्याय के छठे सूत्र मे अज्ञात भावों से भी कर्मास्रव होते रहना कहा है। अज्ञातकृत्य भी कर्मबंध करा देते हैं। एकेन्द्रियों के स्थिति बन्ध अत्यल्प होता हैं इसका कोई महत्व नहीं हैं। नीतिवान् राजा के जाने बिना कोई अज्ञात व्यक्ति अभय प्राप्त कर ले। सुराज्य मे चाहे जहा निर्द्वन्द्व तीर्थयात्रा या व्यापार करें। सरकारी "शफा खानों या पचायती औषधालयों से चाहे कोई अनजान व्यक्ति औषधिया प्राप्त करले,प्रकृष्ट देशनेता भले ही जनता के अज्ञात, अनिच्छ रूप से लोकोपकार कर रहे हों। यदि बिना जाने आपके रक्षित गेहुओं को चूहे, गिलहरी, बन्दर खा जायं या किसान के खेतो मे से अनेक पक्षी, पशु अन्न घास खा जाय अथवा नि.स्वार्थ विद्वान् से अज्ञात व्यक्ति ज्ञान दान प्राप्त करले तो मित्र ! राजा, पचायत नेता किसान विद्वानों को थोडा सा तो पुण्यबन्ध हुआ मान ही लो। 'अज्ञातों पर परोपकार कर रहे उन्हे पुण्य बन्ध

नहीं होगा' ऐसा तो न कहो। तद्वत् एकेन्द्रियों के अज्ञात भावों या क्रियाओं से पुण्य या पाप होने को मान लीजिये-गा। राजा आदि दृष्टान्त गनी है एकेन्द्रियों के मन नहीं है यों कह देने से अज्ञात क्रियाओं में विशेष अन्तर न पड़ा अच्छा कुछ कमती आस्रव होगा, थावे २ पर निर्णय (फैसला) करलो, या सही, "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित"।

एकेन्द्रियों म अभाव-रूप दोष भी अनेक पाये जाते हैं जैनों के यहां तुच्छ अभाव नहीं माना गया है किसी का भी अभाव प्रतिपक्ष का भाव स्वरूप है या आधार रूप है कृतज्ञता का अभाव कृतघ्नता है शीत का अभाव उष्ण चोरी का अभाव अचौर्य और मूर्छा का अभाव आदि-जन्य धर्म है। तभी तो जिनदर्शन न करना, जिनपूजन न करना संयम न पालना, अष्टमी चौदशको हरी न छोड़ना इन्द्रिय विजय नहीं करना, पानी न छानना ये भी बड़े भारी दोष माने जाते हैं। हमारे और आप के भी इन अभाव रूप दोषों से अनेक दुष्कर्म आते रहते हैं। लोक में भी उपार्जन न करना, बच्चों को न पालना, न पढ़ाना, परोपकार न करना कृतज्ञ न बनना ये बड़े दोष माने गये हैं।

यदि सरस "निसर्ग विगध निमान विलोभ विमाय विराग विशद विशोभ अनाकुल विदम्भ वितृष्ण विदोष

निनिद्र, विहार विराग निरग निमोह" इत्यादि अभाव स्वरूप अपनी आत्मा या सिद्धों का चिन्तन करने से पुण्यास्रव हो जाना आप मानते हैं तो व्रतधारणाभाव, सयम पालनाभाव, क्षमा अभाव, ब्रह्मचर्य अभाव आदि अभावों से एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवोंके पापास्रव हो जाना भी सुघटित है। द्रव्य गुण पर्यायें सभी भाव और अभाव से गुम्फित हो रही हैं किसी जैन ने यदि परिग्रह-परिमाण नहीं किया है हरित कायिक या रसो की अथवा देश दिशाओंकी मर्यादा नहीं की है तो भले ही वे बाहर की वस्तुएं उसके उपयोग मे नहीं आ रे किन्तु अविरतिजन्य पापास्रव होता ही रहेगा अभाव बडा काम करते हैं इसे भूलना नहीं। सम्पूर्ण पदार्थों मे परस्परापेक्ष अन्योन्याभाव पडे हुये हैं। नास्तित्व धर्म अगुरुलघु गुण भी है। तभी तो वर्तमान के प्रत्येक मनुष्यो, स्त्रियों, बालकों, देवों, नारकियो, घोडों बकरियों, कबूतरों, चूहों, मक्खियों घुनो अन्य विकलत्रयों जुओं गेहुओं मू गों बाजराओ अमरूदों केलों आदि की सम्पूर्ण सूरतें मूरतें न्यारी २ हैं। रस गन्ध भी भिन्न २ हैं यही सर्वव्यापी भेद भूत, भविष्य-कालीन सभी उक्त पदार्थों में केवल-व्यतिरेकी रूप से ओत प्रोत प्रविष्ट हो रहा है।

"सर्वात्मक तदेक स्यादन्यापोहव्यतिक्रमे" ।

(देवागमस्तोत्र)।

यदि भेद को न माना जाये तो सर्वपदार्थों की मिल कर एक चटनी बन बैठे तथा च चालिनी न्याय से सब का मटियामेट हो जावेगा। स्वकीय अस्तित्व ही नहीं ठहरे। सप्त-भङ्गी में पडे हुये कल्पित अस्तित्व धर्म से वस्तुभूत अस्तित्व गुण न्यारा है। अच्छा सुनिये—

विकलत्रय जीव अनेक उपकार भी करते हैं। छोटा बडा गेंडुआ किसानों का महोपकारक है। खेत की भूमि को नरम करता है खोदता है उन छेदों में अंकुरों की जड सरलता से घुस जाती हैं मर कर खाद बन जाता है कोई भोले किसान गेंडुओं को भगवान् कह देते हैं। सीपें अज्ञात भाव से मोती को पैदा करती हैं। तीतर का खाद्य हो रही दीमकें सर्पों को अपना बना बनाया घर(ऊ ची कोठी) दे डालती हैं। पहाड़ी विषधर बिच्छू पत्थर में डक मार मार कर उसको बढ़िया विष बना देते हैं जिसको शुद्ध कर विषगर्भ तैलादि उत्तम औषधियां बनाई जाती हैं। मधु मक्खिकायें मधु (शहद) बनाती हैं। मधु सेवन से जिस रोगी को लाभ हुआ है उसके पूर्ववर्ती साता वेदनीय पुण्य का उदय ही है। हा अभक्ष्यभक्षण से वर्तमान में पाप कर्म भले ही बन्ध जाय। जिस चोर को जाते ही झट माल मिल जाये, परस्त्री-गामी को नवोढा या सुन्दर वेश्या प्राप्त हो जाये शिकारी के सन्मुख वध्य पशु पक्षी आजाय, डांके

वाले को निधान हाथ लगजाये, मासभक्षी को आमिष दीख जाय, चटोरा को चाट दही, बडे, जलेबी विस्कुट दे दिये जाय तो उस समय इन पापियों के पूर्व-सचित पुण्य का उदय समझा जायेगा।

हा इन कुकृत्यों से तत्काल तीव्र दुष्कर्मों का बध हो जाना अनिवार्य है। आबाधा काल और अचलावलि के बाद पाप फल भोगना ही पड़ेगा। उदीरणा के कारणों अनुसार पहिले भी भोग सकोगे। काष्ठाङ्गार को पुण्य से राज्य मिल गया। हा विश्वास-घात करने से कठोर पाप बन्ध कर नरक गया। तत्काल लौकिक सुख अनुभव कराने वाला पुण्य और दु ख वेदन कराने वाला पाप है तभी स्पर्श आदि चार पिंड प्रकृतिया दोनो मे गिनी हैं। परघात तिर्य च आयु पुण्य है उपघात तिर्यग्गति पाप है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह अभक्ष्य सेवन आदि अनेक पापो का काथ एक विश्वासघात है। चारित्र गुण के विभाव सङ्कर परिणाम भी हो जाते हैं। लोभ, हास्य, रति, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद तथा पाच पाप सप्त व्यसन या अन्य दोषों मे भी मिली एक सङ्कर पर्याय हो रही है। कभी एक चारित्र मोहनीय की परम प्रधानता से और इतर कर्मों का प्रदेशोदय हो जाने से असङ्कर पर्याय हो जाती है।

अर्धचक्री बडे पुण्य योग से बनते है यहा तक कि तीन नरकों से निकल कर जीव तीर्थङ्कर हो जाते हैं। (मञ्झणतिए णत्थि, तित्थयर) किन्तु अर्धचक्री नरक और भवनत्रिक से नहीं आते। वर्तमानम पुण्योदय को भोग रहे ये हिंसा परस्त्री-हरण बहु आरम्भ परिग्रह व रुद्र परिणाम करने से अधोलोक को जाते हैं।

देखो चार भग हैं (१) पाप उदय है और जीव पुण्य को उपजाता है जैसे परीषह उपसर्ग सहना स्वय सेवकत्वम विघ्न सहना। (२) पुण्य जन्य कार्य है और पाप जनक हैं। भोज्य होते हुये भोग भोगने की शक्ति राज्यसम्पदा नीरोगअदरिद्र यौवन मद कठोराविकार। (३) पुण्य से उत्पन्न पुण्य ही का उत्पादक भाव। जैसे श्रावक मुनियोंको दान शरणार्थियों को भोजन, वस्त्र, गृह, आजीविका, धन देकर सहायता करना, मारने वालों से बर्र, चूहा, कुत्तों, पक्षियों बलिपशुओं को बचाना, परोपकार, बिम्ब प्रतिष्ठा कराना, चैत्यालय बनवाना, पर कल्याण, (स्व कल्याण तो सवर जनक है) (४) पाप का ही बेटा पाप का ही बाप जैसे भिखारीपन मुडचिड़ापन, तीव्रीकृपणता, शोक, अनुताप, आक्रन्दन, ईर्ष्या, परनिन्दासक्ति अभीक्ष्ण-रोगित्व, गुणी की अपकीर्ति करना, धर्मावर्णवाद, चिर दरिद्रता, नीति रहित राजा के राज्य मे रहना, मूर्खपुत्रत्व

कई वार टोटा आदि।

ये द्वीन्द्रिय आदि जीव स्वपल से ज्ञात अज्ञात महान् अपकार भी करते हैं मच्छर मक्खी खटमल टिड्डिया रोग-कीट, दाद प्लेग के कीडे ये अनेक पशु मानवों को भारी कष्ट पहुचाते है। जुआ खायो गया जलोदर करता है। मकड़ी कोढ़ को उपजाती है, वर्रै या ततैया बिच्छू कातर डस घुण के कीडे काट कर हम आप को दुःखित कर रहे हैं। इनका कुज्ञान न्यून नहीं है। हम आप अपने रक्त को नहीं पहिचानते है परन्तु मच्छर खटमलों जोंकों को रक्तपरीक्षा (ब्लड टैस्ट) करना अच्छा आता है यहा नदिया स्वादु अल्पश्रम साध्य रक्त है यह सो रहा है या जाग रहा है ? इन बातों को वे झट जाच लेते हैं। योग्य समय पर ये डाका डालने के लिये निकलते हैं।

एकेन्द्रिय विकलत्रय जीवों के इन्द्रिय–लोलुपता कषायभाव विषय–गृद्धि अधिक है चींटिया चींटे सेरों नाज को इकट्ठा कर अपने घरों म गुप्त रख लेते है कोई भी चींटी वर्षा मे नहीं भीगती है। वे प्रथम से ही मेह, आधी का परिज्ञान कर अपने सुरक्षित घरों मे पहुंच जाती है। भले ही प्रमादी पुरुष या पशुओं के देखे विना टट्टी पेशाब करने मे सैकडों चींटिया मर जायें क्योंकि अदृष्ट सृष्ट मल उत्सर्ग करने वाले जीवों ने चींटियों को धोका दिया है। इसम

चींटियों का अपराध नहीं है। टूटने हुये कुछ साथ को पाकर एक चींटी अपने संग की हजारों लाखों चींटियों को इकट्ठा कर लेती है। चींटियों की पंक्ति आते जाते अपनी निरादरी से संकेत द्वारा बातें कर लेती हैं। स्टोरदान म बीस गज दूर पर मिष्टान्न रक्खा है उसम छोटी जाने आने योग्य सन्द भी है। स्टोरदान पानी के स्थिले या छींके में गढ़ पर धरा है। यह गम्य है या अगम्य है इन सब बातों को वे कुश्रुतज्ञान से जान लेती हैं चींटियों को ऐसे प्रतिबन्धो का ज्ञान प्रथम से ही अपने कुश्रुत से हो जाता है वे घर से ही नहीं निकलती हैं। श्रुतज्ञान से कुश्रुतज्ञान तीव्र होता है। अवधिज्ञान से विभङ्ग घट है। त्रीन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु ४९ दिन और चौइन्द्रिय की ६ मास है। जघन्य श्वास के अठारहवें भाग है।

चींटिया अपने सम्मूर्छन अडोको बनानेके लिये न जाने कहा २ से सफेद द्रव द्रव्य लाती है। कुछ देरके मलम उपन गई चावल के हजारवें भाग छोटी २ लरों को मुह से पकड़ कर पुन मारकर गोल अण्डा सा बना लेती हैं उन अण्डोंको विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया से सेवती हैं कभी अण्डों को हवा मे रख देती हैं। सात दिन मे वे अण्डे काली चींटिया बन जाते हैं। लाल काले चींटे भी वृक्षो के पत्र कुण्ड मे या भूमिछेदों म ऐसी ही जनन प्रक्रिया से सम्मूर्छन चींटों

को बना लेते हैं। ये चींटा चींटियों के अण्डे कोई मिथुन सयोग–जन्य पेट से नहीं निकलते है। इनका अण्ड जन्म नहीं, किन्तु सम्मूर्छन जन्म है।

ततैया, वर्र भी इसी प्रकार मक्खियो या अन्य कीडों को घातकर अपने छत्तेंम लाकर बड़ी रासायनिक प्रक्रिया से कुछ दिन बन्द रखकर पतला लेप लगाकर छोड देते हैं। दस पाच दिन मे वे सब ततैया वर्र बन जाते हैं। भौंरी (अजिन यारी) बड़ी गवेपणा से झींगुर को पकडकर डक से मारकर अपने स्वनिर्मित बढ़िया चीकनी मिट्टी के निरुपद्रव घर मे धर देती है। जनन रसायन प्रक्रिया करती है पुन गर्भस्थान का मृदु ऋजु लेप देती है कुछ दिनोंम वह झींगुर का मरा हुआ शरीर ही अजनिय.री का सम्मूर्छन काय बन जाता है। मधु मक्खी के जन्म, देशान्तरगमन, मधु अन्वेपण रचना या कुमतिज्ञान जन्य कुश्रुत ज्ञानों स्मरणों धारणाओं अथवा लोभ, क्रोध, के कृत्य तो बहुत दिनों तक पठन की सामग्री है।

मकड़ी छनरिया सरीखा चारों ओर ठीक नाप का जाल पूरती है। दूसरी जाति की चौइन्द्रिय मकड़ी दो भींति की सद मे योनि स्थान बनाती है, न जाने कहासे स्वापत्यशरीर योग्य नौ लाख कुल कोटि पदार्थों मे से छेक कर क्या २ रसायन लाती है उसके ऊपर पाच पी के लट्टा से भी नढ़

चींटियों का अपराध नहीं है। ढूंढते हुये कुछ खाद्य को पाकर एक चींटी अपने मग की हजारों लाखों चींटियों को इकट्ठा कर लेती है। चींटियों की पंक्ति आते आते अपनी बिरादरी से संकेत द्वारा बातें कर लेती हैं। कटोरदान में बीस गज दूर पर मिष्टान्न रक्खा है उसमें छोटी जाने आने योग्य सन्द भी है। कटोरदान पानी के किले या छींके के गढ़ पर धरा है। यह गम्य है या अगम्य है इन सब बातों को वे कुश्रुतज्ञान से जान लेती हैं चींटियों को ऐसे प्रतिबन्धों का ज्ञान प्रथम से ही अपने कुश्रुत से हो जाता है वे घर से ही नहीं निकलती हैं। श्रुतज्ञान से कुश्रुतज्ञान तीव्र होता है। अवधिज्ञान से विभङ्ग घट है। त्रीन्द्रिय जीवकी उत्कृष्ट आयु ४६ दिन और चौइन्द्रिय की ६ मास है। जघन्य श्वास के अठारहवें भाग है।

चींटिया अपने सम्मूर्छन अंडोंको बनानेके लिये न जाने कहा २ से सफेद द्रव द्रव्य लाती हैं। कुछ देरके मलमें उपज गई चावल के हजारवें भाग छोटी २ लटों को मुह से पकड़ कर पुन मारकर गोल अण्डा सा बना लेती हैं उन अण्डोंको विलक्षण रासायनिक प्रक्रिया से सेनती हैं कभी अण्डों को हवा मे रख देती हैं। सात दिन मे वे अण्डे काली चींटिया बन जाते हैं। लाल काले चींटे भी वृक्षों के पत्र क्षुद्र म या भूमिछेदों में ऐसी ही जनन प्रक्रिया से सम्मूर्छन चींटों

अपने सजातियों को बना लेते हैं। द्वा दूसरे सम्मूर्छन जीव जैसे छोटी २ मछलिया, मेंडकिया, मक्खिया, घुन, गिडारें, मच्छर, चौमासेकी रात्रि या दिन में उपजे असख्य जीव तो स्वयोग्य कुल योनियोंमें निज कर्मवश मात्र अपने शरीरों को बना डालते हैं स्वापत्यों को नहीं। ये जीव सम्मूर्छन हैं इन्द्रा वश स्वापत्य शरीरोंको नहीं बना पाते हैं।

श्रोता जी! अनन्तानन्त जीव प्रतिक्षण मररहेहैं वे कर्मयोग द्वारा नोकर्मोंका आकर्षणकर पुन अन्य योगों द्वारा कर्म नोकर्मों को खेंचकर स्वपर्याप्तियों से अपना शरीर तैयार करते हैं। जीव-शरीरों की सृष्टिके ढग कई प्रकार के हैं। द्वादशाङ्ग म इन की उत्पत्ति प्रक्रिया अतीव विस्तृत गूथी होगी। कभी उसका भी अध्ययन करेंगे। भावना ऊ ची रक्खो।

भावार्थ-पथरी, सैंधव, वनाग्नि, वात्या, निगोदिया, कठफूला, काई, साधारण, अमरवेल, शख, सीप, चावल की लट, जुआ, लीख, इन्द्रगोप (राम की गुडिया) सडी कचौड़ी, सडे अमरूदके जीव, फोड़ेके कीट, मास रक्त जीव तदुल रावव मत्स्य आदि अपने शरीरों को तत्काल तैयार कर लेते हैं अर्थात् योग्य कुल योनिस्थान मिलते ही झट उनका आहार कर स्वकीय योग पर्याप्तियों कार्मण शक्ति

कर स्वच्छ, शुभ्र रेशम बनाकर उस कमरा उड़ा देती है स्वय बाहर चली जाती है। कुछ काल पीछे उस गर्भागार में से दशों मकड़िया उपज कर बाहर आ जाती हैं।

गोम्मटसारमें इन योनि और कुलों का वर्णन किया है। मैंने इस जीवशरीरोत्पत्ति प्रक्रिया का कुछ स्वमनसा अध्ययन किया है। यहां इस रहस्य को लिखने का तात्पर्य यह है कि ऐसी करतूतें, मायाचार तीव्र लोभ, ताप क्रोध, सन्तानोपार्जन, गृहनिर्माण कला, स्वइष्टोपाय ढूढना साधनग्रह, मिलकर शत्रु पर चढ़ाई करना ये सर्व प्रयत्न एकेन्द्रिय विकलत्रयोंके पाये जाते हैं। ये सब उन अनन्तानुबन्धी कषायों के कार्य हैं जिन कषायों के साथ व्यक्त अव्यक्त, अज्ञात रूप से प्रदोष, निन्हव, केवलि अवर्णवाद संघ अवर्णवाद, नि शीलत्व, योगवक्रता, परनिन्दा, विघ्न करण आदि दोष पाये जाते हैं यों एकेन्द्रिय और विकलत्रयों के सजातीय कषाय योगों द्वारा अष्ट कर्मों का चतुर्विध बन्ध होता रहता है। कर्मों में स्थिति न्यून पड़ती है अनुभाग तीव्र पड़ता है। अनुभाग ही पका बन्ध है इनका कुज्ञान अपेक्षाकृत न्यून नहीं है बड़ा बढ़िया है।

कोई उच्च वैज्ञानिक या आविष्कारक हजारों यंत्रों या पुद्गलों की सहायता से इन जीवित शरीरों को नहीं बना सकता है। कतिपय एकेन्द्रिय, विकलत्रय जीव तो स्वय

अपने सजातियो को बना लेते हैं। हा दूसरे सम्मूर्छन जीव जैसे छोटी २ मछलिया, मेंडकिया, मक्खिया, घुन, गिडारें, मच्छर, चौमासेकी रात्रि या दिन मे उपजे असख्य जीव तो स्वयोग्य कुल योनियोंमे निज कर्मवश मोर अपने शरीरों को बना डालते हैं स्वापत्यों को नहीं। ये जीव सम्मूर्छन हैं इच्छा वश स्वापत्य शरीरोंको नहीं बना पाते हैं।

श्रोता जी! अनन्तानन्त जीव प्रतिक्षण मररहेहैं वे कर्मयोग द्वारा नोकर्मोंका आकर्षणकर पुन अन्य योगों द्वारा कर्म नोकर्मों को खेंचकर स्वपर्याप्तियों से अपना शरीर तैयार करते हैं। जीव-शरीरों की सृष्टिके ढग कई प्रकार के हैं। द्वादशाङ्ग म इन की उत्पत्ति प्रक्रिया अतीव विस्तृत गूथी होगी। कभी उसका भी अध्ययन करेंगे। भावना ऊ ची रक्खो।

भावार्थ-पथरी, सैंधव, वनाग्नि, वात्या, निगोदिया, कठफूला, काई, साधारण, अमरबेल, शख, सीप, चावल की लट, जुआ, लीख, इन्द्रगोप (राम की गुडिया) सडी कचौडी, सडे अमरूदके जीव, फोडेके कीट, मास रक्त जीव तदुल राघव मत्स्य आदि अपने शरीरों को तत्काल तैयार कर लेते हैं अर्थात् योग्य कुल योनिस्थान मिलते ही झट उनका आहार कर स्वकीय योग पर्याप्तियो कार्मण शक्ति

से प्राण मन वचन काय इन्द्रियोंको समूर्छन बना डालते हैं। ये स्वकीय जाति वाले अपत्यो के शरीरों को नहीं रचते हैं मात्र अपना गात्र बनाया करते हैं।

प्रति समय अनंत जीव मरते हैं। वे उसी समय योग्य योनियों म जन्म ले रहे हैं। कार्मणकाययोग के एक दो तीन समय भी चालू इसी उम्र मे गिने जायगे। इन सूक्ष्म तत्वोंका वर्णन गोम्मटसार मे है। अन्य विशाल शास्त्रों या प्रति-पत्तिक श्रु त अथवा द्वादशाग म अतीव विस्तृत प्रतिपादन किया गया होगा। ओं नम द्वादशाग वाण्यै सरस्वत्यै।

इस प्रकार भाव अभाव परिणामोंका पर्याप्त विवेचन हो चुका है। आप प्रबोधकर चुके होंगें अभावको थोड़ा और आगम प्रमाण से समझ लो।

अर्जु नस्य प्रतिज्ञे द्वे-न दैन्य न पलायनम्। (उक्तञ्च) अर्जु नकी दो ही प्रतिज्ञायें थीं दीनता न करना और युद्ध से भागना नहीं। 'अप्रादुर्भाव खलु, रागादीनाम् भवत्यहिंसेति।

(अमृतचन्द्र सूरि) -

राग आदि नहा उपजना ही अहिंसा है,
अहिंसा भूतानाम् जगति विदित ब्रह्म परम।
न सा तत्रारम्भोस्त्यणु (श्री समन्तभद्राचार्य)
अणु आरम्भ से भी रहित हो रही अहिंसा परमब्रह्म

स्वरूप ही है।

आर्तरौद्र-परित्यागस्तद्धि सामायिक व्रत,

इन्द्रियवृत्तिनिरोध, जीववध अभाव, स्वरूप सयम के साथ आर्तरौद्र ध्यानों का नहीं करना सामायिक है।

क्रोधानुत्पति क्षमा कालुस्याभावः क्षमा।

(राजवार्तिक)

क्रोध या कलुपता नहीं उपजाना क्षमा है,

कार्योत्पाद क्षयो हेतो। (आप्त-मीमांसा)

उपादान कारण मानी गई पूर्वपर्याय का क्षय हो जाना ही उतर पर्याय का उत्पाद है।

भिक्षुका नैव याचंते बोधयन्ति गृहे गृहे,
दीयता दीयता लोका, अदानात् फलमीदृशम्।

(नीति)

कवि कहता है कि भिखारी लोग मागते नहीं हैं किंतु घर २ में जाकर लोगों को समझाते हैं कि हे मनुष्यो दान करो, दान करो, देखो दान नहीं करने से हमारे सदृश दीन, दुःखी, दरिद्र, रुग्ण, दयनीय अवस्था हो जावेगी। द्वार २ भीख मागते फिरोगे।

दुर्वार नरकान्धकूपपतन, जिनार्चा न रचयन्ति तेषा।

(सूक्ति मुक्तावली)

जिन पूजन नहीं करने से अन्धकूप नरक में पतन होना अनिवार्य है। असंज्ञी जीव अविरति, अप्रत्याख्यान,

अब्रह्म, अल्पारम्भाभाव, अल्प परिग्रह अभाव इन से प्रथम नरक जाता है।

राजवार्तिक छठे अध्यायमें-आचार्य उपाध्यायके अनुकूल न चलना, श्रद्धा अभाव, नास्तिक्य अनुकम्पा अभाव, अनुत्सेक, नि शीलत्व, तत्त्वानुपलब्धि, अविसम्वाद, अभिवादनाभाव, द्रव्यापरित्याग, प्रशस्तक्रियाओं का न करना, अनिवृत्ति, अप्रत्याख्यान क्रिया, निर्दयत्व इन अभावों से भी कर्मास्रव होते रहना बताया है।

कोऽसौ द्रव्यार्थिक इति पृष्टास्तच्चिन्ह्माहुराचार्या ॥५९७॥
व्यवहार प्रतिषेध्यस्तस्य प्रतिषेधकश्च परमार्थ ।
व्यवहार प्रतिषेध मएव निश्चयनयस्य वाच्य स्यात् ॥५९८॥
व्यवहार स यथा स्यात्सद्द्रव्य ज्ञानवाश्च जीवो वा ।
नेत्येतावन्मात्रो भवति स निश्चयनयो नयाधिपाति ॥५९९॥

(पंचाध्यायी)

६०२, ६०४, ६०५, ६०७, ६०८, ६०९ वीं गाथाओं को भी पढ़ लो। इनका प्रस्तुत ऐदम्पर्य यही है कि व्यवहार नय के विषय हो रहे सभी विधानोका निषेध करना ही निश्चय नय का विषय है। वह नय ज्ञानाभाव अनुपयोग (तुच्छ) नहीं किन्तु अर्थाकार लम्बा, चौडा विकल्पज्ञान है। क्षपक श्रेणी मे कर्मों को काटता है।

इसप्रकार सर्वत्र भाव अभावका व्यापक साम्राज्य है। चारित्र गुण की एक समय-वर्ती पर्यायमें भावांश अभावांश रूपसे रली मिली परिणति को तो देखो, मुनि के अठाईस मूल गुण चारित्र गुण के परिणाम हैं। आचार्य की तीन गुप्तिया अभाव-प्रधान हैं। साधु की पाच समितियां भाव-प्रधान हैं। अहिंसा (अभाव) सत्य(भाव)अचौर्य (अभाव) ब्रह्मचर्य (भाव) अपरिग्रह (अभाव) पाच इन्द्रियों का निरोध अभाव रूप है षट् आवश्यक भाव-रूप हैं। सात स्फुट मूल गुणों में भूशयन, लोच, एक भक्त, उद्भभुक्ति (खडे आहार लेना) ये भावांशों को लिये हुये हैं। अस्नान, अदन्त धावन, अवस्त्रत्व ये अभावों को पकड़ बैठे हैं। इसी प्रकार दशों धर्मों, बाह्यतपों और चौरासी लाख उत्तर गुणों मे या शील के अठारह हजार भेदों में भी भाव, अभाव से सस्कृत परस्पर सहोदरत्व (भाई चारा) को लिये हुये एक रली मिली पर्याय हो रही है। सिद्धों के आठ मूल गुणोंम भी सम्यक्त्व, ज्ञान, दर्शन, वीर्य ये चार भावात्मक हैं। और सूक्ष्मत्व (अमूर्त त्व) अवगाह, अव्याबाध, अगुरुलघु ये चार अभावात्मक हैं। जन्म और मृत्यु का समय एक है।

देवदत्त की आयु यदि साठ वर्ष है वस इकसठवें वर्ष के प्रथम समय में उसका मरण है तभी अग्रिम पर्याय का

जन्म है। उसी का उत्पाद उसी का व्यय एक समय में नहीं हो सकता है, निरोध है। सौंफ, बादाम, काली मिर्च, इलायची, बूरे की ठण्डाई नामक एक बन्ध पर्यायमें मिला हुआ एक चित्र रस है और रासन प्रत्यक्ष भी सकीर्ण है। तभी तो बूरा कम है मिर्च अधिक है, यों बता देते हो। पेट म जाकर पित्ताग्नि, मस्तिष्क, आख, हृदय, आदि न्यारे २ अवयवों म जीव-पुरुषार्थ से इन का बटवारा हो जाता है। पाचों रगोंके मिश्रण हो रहे चित्ररूप और तज्ज्ञानमे भी यही खिचड़ी दशा है। सौ गज दूरसे मेलाका शब्द सुनिये, अनेक शब्दों के मिश्रण और श्रावण प्रत्यक्ष म भी यही छूत घुस रही है। सर्वत्र ज्ञान, ज्ञेयों मे चित्रता ओत प्रोत रम रही है।

एक माध्यमिक दार्शनिक ने तो अकेला चित्राद्वैत तत्व ही स्वीकार कर लिया है। उनका अनुभव है कि—
"किंस्यात् सा चित्रतैकस्या न स्यात्तस्यामतावपि। यदीदं स्वयमर्थेभ्यो रोचते तत्र के वयम् (प्रमेयकमलमार्तण्ड)।"

व्यग्र या प्रसन्न होकर माध्यमिक बौद्ध कहता है कि यह चित्रता अकेली बुद्धि मे भी घुस रही है। अर्थों म भी प्रविष्ट हो रही है। सभी प्रमेय प्रमाणों को यह चित्रत्व बडे आनन्द से रुच रहा है तो इस सिद्धान्त मे हम क्या कर सकते हैं? हमें कौन पूछे? जैसा है वैसा कह दिया

है। "तवानवस्था परमार्थतत्त्व" (श्री महाविद्वान् धनञ्जय)

हे जिनेन्द्र नियत अवस्था नहीं होना ही आपके मतमे सर्वोत्कृष्ट तत्व माना गया है।

अब आपके सद्विचार म यह सिद्धान्त स्फुरित हो गया होगा कि एकेन्द्रिय, नित्यनिगोदिया विकलत्रय असज्ञी लब्धि अपर्याप्तक और मरकर विग्रह-गति मे पाये जा रहे जीवों मे भी युक्त्यागमोक्त इन भाव अभाव रूप दोषो से अष्ट कर्मास्रव प्रति-क्षण होता रहता है। विग्रह गति म मात्र आयुष्य कर्म का आस्रव नहीं होता है। अन्य सातो कर्म आते रहते हैं। यो मूर्छित, रोगी, समाधिस्थ, मत्त, सन्निपाती, त्यागी, श्रावक मुनि, जी रहे मर रहे गृहीत मिथ्यादृष्टि, अगृहीत मिथ्यात्वी, अज्ञानी, चतुर्गति के जीवो यानी प्रथम से ले कर दसवें गुणस्थान तक सभी समारियो के सतत कर्मास्रव होता रहता है। कारण डट रहे हैं। कार्य होगा ही। समझाना लम्बा हो गया है। मैं भी थक गया हू।

जीवोंकी शरीर-रचना पर यह परामर्श और भी करना है कि प्रति-क्षण मर रहे असख्य जीव उन वर्गों आदि कर के बनाई गई या कारण अनुमार बन बैठीं योनिस्थलियो मे यथोचित जन्म ले लेते हैं। भावार्थ-तीन लोक म अगणित स्थानों पर अनन्त योनि-स्थल बन रहे हैं। मर

गये जीवों के अनन्त कर्मों का उदय आ रहा है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की सामग्री पाकर तमा कर्मोदय फल दे बैठता है। जीव चौरासी लाख जाति की योनियों म से यथोचित एक योनि में जन्म लेकर योग्य कुल, कोटि-आपन्न पुद्गलों का आहार कर लेता है। जैसे कि कोई द्विदलभक्षी जन दही, बेसन, लार का योग मिला देता है यहा वहा मर रह असख्य जीव झट वहा त्रस जन्म ले लेते हैं।

कर्मों के फलोदय हो जानेम मात्र स्थिति पूरी हो जाना ही कारण नहीं है। योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी कारण हैं। "द्रव्यादिनिमित्त-वशात् कर्मणाम् फलप्राप्ति-रुदय" (श्री अकलङ्कदेव)।

किसी जीव के मरते समय तिर्यञ्च आयु और त्रस कर्म का उदय है। उस अवसर पर कहीं द्वीन्द्रिय क योग्य कुल या जाति खाली पड़ी है वस वहा ही वह जीव जन्म ले लेगा। भले ही उस जीवके पश्चात् त्रस व्याप्य त्रीन्द्रिय कम का भी उदय काल प्राप्त हो गया हो वह कर्म दब जायेगा या सक्रमण हो जायेगा, प्रदेशोदय हो जायेगा तथा उसे अग्रिम जन्मों म पुन कभी सभाल लेंगे। कर्मों की उदय के समान उत्कर्षण, अपकर्षण, सक्रमण, उदीरणा, उपशम आदि दशायें भी हो जाती हैं। कर्मों में असख्याते

वर्षों की स्थितिया पडी हुई है। आज ही कोई ऐसी आवश्यकता नहीं पडी है जो कि अनिवार्य फल उदय हो ही जाय। जिन प्रकृतियो का फलोदय नितान्त आवश्यक है उन का फल भोगना ही पडेगा। आयु का उदय अत्यावश्यक है। उसकी अविनाभावी प्रकृतियोंका भी। देवोंके असाता और नारकियों के साता का भी उदय रहता है। किन्तु योग्य चेत्र न होने से फल नहीं दे पाता है।

कदाचित् यदि कोई उच्चगोत्र, मनुष्य आयु, प्रशस्त साता, आदि पुण्य प्रकृतियों के उदय वाला जीव जन्म ले रहा है तब किसी धनाढ्य भाग्यशाली के घर मे यदि योग्य गर्भाशय खाली नहीं है तो किसी कुलीन गरीब के घर मे वह जीव जन्म ले लेगा। गरीब को ही महा धनवान् निहाल कर देगा अथवा गोद चला जावेगा (धन्यकुमार) इसी प्रकार किसी उच्च आत्मा धनिक के पुण्य-हीन जीव जन्म ले बैठे तो धनिकको दरिद्र कर देवेगा (नल)। तभी तो क्वचित् धनिकों के निर्धन और निर्धनों के धनिक या पण्डितों के मूर्ख, मूर्खों के पण्डित तथा धर्मात्माओं के पापी और पापीके धर्मात्मा लड़के हो जाते हैं। द्रव्य आदि अनुसार अनेक परिवर्तन होते दीख रहे हैं। कथमपि प्रसग न मिलने पर उत्कर्षण विधि द्वारा कर्मों के उदय भविष्य काल मे सरका दिये जाते हैं। शीघ्रता क्या पड़ी है तत्काल

क्रमश भी हो सकते हैं।

खाया गया या उन्मत्त कुत्ते का विष भी १ इंजेक्शनों द्वारा निर्विष कर दिया जाता है। छोटी सी अपने रक्त की बनी हुई फुन्सी विपाक्त होकर प्राण ले लेती है। थर्ड क्लास की टिकिट लेकर कोई सेकिण्ड क्लास की गाडीमें बैठ जाता है। कभी फर्स्ट क्लास की टिकट खरीद कर तीसरी क्लासके डिब्बे में बैठते हैं। कभी अत्यधिक भीड़ हो जाने से एक दो दिन पीछे भी प्रवास करना पड़ता है कारणों अनुसार प्रवास नहीं भी कर पाते हैं।

कई प्रकारों से कर्मोंका बटवारा, समझौता कर लिया जाता है। कर्मों का बन्ध करके तुम्हीं उनके भोक्ता हो। तत्काल भोगनेका आग्रह छोड़ो। कुछ कर्म नहीं भी भोगने पड़ते हैं। देखो सेठ राजा धनपति मानव कितने गरिष्ट माल मेवा घी दूध पक्वान्न खाते पीते हैं किन्तु क्या सब का सार निकल कर शरीरमें रम जाता है ? नहीं, जो थोड़ा सा रम भी जाता है उस शरीरिक शक्तिका भी क्या सत् उपयोग होता है। कदाचित् गिरनार सम्मेद शिखर की यात्राओं में कुछ उपयोग हुआ समझ लो।

एक चावल के चार सौ परतों में न्यारे २ चार सौ स्वाद हैं। भात के एक कौर में खाये गये दो सौ चावलों में से कितने चावलों के भीतर बाहर का स्वाद आप ले

सकते हैं ? कौर के मात्र ऊपर चिपटे बीस चावलोंका एक ओर का कुछ स्वाद आया, वह भी घी, दाल, बूरे ने बिगाड दिया। शेष तो स्वाद लिये बिना यों ही पेट मे ढकेल लिये जाते हैं। आपके वस्त्रों की शीतापनोद, लज्जानिवारण शक्ति का कितना सफल उपयोग हो रहा है ? जिनके पास बढ़िया कपडे बहुत हैं वे उत्तर दें।

बात यह है कि जगत में पुष्प, फल, अन्न, वस्त्र, कितावें, पत्र, जङ्गली औषधिया, भूमि, पर्वत, जल, चिन्तायें, विमर्ष आदि बहुभाग व्यर्थ जा रहे हैं। ससार नाम मात्र है वस्तुत: सब असार है। भेद-ज्ञान बिना ससार ही निरर्थक है। एक डाक्टर ने कहा था कि एक वार प्रवीचार के इन द्रव्य से पाच सौ स्त्रिया गर्भवती हो सकती हैं। एक मनुष्य पर्याय मे वह कितना सफल होता है ? कितना व्यर्थ जाता है ? सोच लो। तद्वत् कर्म फलोदयमें भी लगा लो। अकाम निर्जरा और प्रदेशोदय को आप समझते हैं। तथा तप के द्वारा हुई अनन्तानन्त कर्मों की अविपाक निर्जरासे अन्त मुहूर्त मे मोक्ष हो जानेकी चर्चाको आप जानते ही हैं। अब दूसरी बात सुनिये।

असख्याते प्रकारोंके नाम कर्मके उदय से बनी मानवों की न्यारी २ सूरतों का धार्मिक, लौकिक क्रियाओं पर भी प्रभाव पड़ता है। कोई २ मनोज्ञ जाति के मुनि इतने

सुन्दर होते हैं कि उनके नग्न शरीर को देखने के लिये स्त्री पुरुषों की भीड़ें इकट्ठी हो जाती हैं। छज्जे टूट जाते हैं ऐसी दशा हो जाने पर कदाचित् आचार्य उस मनोज्ञ का आहारार्थ नगर मे जाना रोक देते हैं। शरीर की सुन्दरता शुभ सस्थान, सहनन का आत्मा पर भी प्रभाव पड़ता है। तभी आद्यसहनन वाले को ही मोक्ष होना पड़ा हैं। सातवें नरक जानेका तीव्र पाप भी वही कर सकता है। हा छऊ सस्थानों से मोक्ष हो सक्ती है।

यहा लौकिक कुनड़ा ठेंगना, कुब्जक वामन का अर्थ नहीं है किन्तु अत्यल्प अगण्य, अदृश्य कुब्जक या वामन मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर लेता है जो गठरिया कुबड़ा है या दो ढाई हाथ का वामन है उसे तो आचार्य दीक्षा भी नहीं देते हैं। लघुग्रीव, ठेंगना, काणा, पगु पुरुष जिनदीक्षा नहीं ले सकता है। अष्टाग निमित्त-ज्ञानी आचार्य महाराज शरीर के गुण दोषो को पहिचानते हैं। ये शारीरिक गुण दोष आत्मा पर भारी प्रभाव डालते हैं। आप स्वय समझ लेना। अलम्।

सुई के अग्र भाग पर जितना जल आता है उसमे तीनों लोकों के सम्पूर्ण त्रस जीवो से भी अधिक जल-कायिक जीव हैं। अर्थात् कर्म भूमियों म चातुर्मास में चाहे जितनी सम्मूर्छन त्रस राशि उपज जाय उसमे जितने

त्रस जीव हैं या अन्यत्र घर्मा के ऊपर द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय हो तथा मध्य लोक के मानव या पंचेन्द्रिय तिर्यंचो के शरीरों मे जितने भी विकलत्रय जीव भरे होय अथवा विकलत्रय शरीरों मे भी पुनः जिनदृष्ट अनवस्थाक्रान्त असख्याते विकलत्रयान्तर हो चालीसवीं, पचासवीं कोटि पर जाकर पूर्ववर्ती त्रसों का काय ही तदाश्रित त्रसान्तरों का शरीर बन वैठेगा। यों अनवस्था टूट जायगी। इस दोष को तो हटाना ही है।

एवं चारों गतियों के पचेन्द्रियों को भी मिला लिया जाय इन सब त्रसों से एक जल बिन्दु मे असख्यात गुणे जलकायिक जीव है। रथरेणु से भी छोटे एक निगोद शरीर मे तो अनन्तानन्त एकेन्द्रिय जीव हैं। जो कि निगोद के अतिरिक्त सभी छह काय के असंख्यातासख्यात जीवों तथा इनसे अनन्तगुणे सिद्धों से भी अनन्त गुणे हैं। अतीत कालके समयोंसे भी। उन सभी जीवों के कर्म नोकर्म विस्रसोपचय सब कुछ उसी रेणुस्थानमें निर्बाध ठहर रहा है "धन्या अवगाहशक्ति अचिन्त्यप्रभावा"।

ये सब अपने शरीरों को स्वय बनाते हैं। इन सब जीवों में शक्ति रूप से सिद्ध परमात्मत्व विद्यमान है। जीव स्वपुरुषार्थ से यदि मोक्ष प्राप्त कर लेता है फिर स्वशरीर बनाना तो सर्वथा तुच्छ कार्य है।

किसी मनुष्यके मूत्राशय मे पथरी रोग हो जाता है। उस पथरीमें पृथ्वी कायिक एकेन्द्रिय जीव हैं मनुष्य काय मे पूरा एक मनुष्य पञ्चेन्द्रिय जीव है मनुष्यके मांसमेंतथा रक्त म अनेक विकलत्रय और बादर निगोद जीव भरे हैं। तत्काल के मूत्र में कोई जीव नहीं है प्रासुक है। यदि सड़ जाय, विकारी हो जाय तो मूत्र या लार म भी जीव उपज जाते हैं ऐसे तो रोटी, दाल, पूरी, लड्डू, अमरूद, केला के सड जाने पर भी इनमें विकलत्रय हो जाते हैं। उदर रोगसे किसी २ के पेट में ही मल में सुई सदृश या बड़े भी कीड़े उपज जाते हैं। इसका हम क्या करें ?

द्रव्येषु पुरीषादिषु विचिकित्सा नैव करणीया" (अमृतचन्द्र)

तभी तो सागारधर्मामृत में उगाल, मूत्र, श्लेष्म आदि को अनुपसेव्यों में गिनाया है, त्रसघात म नहीं। यों मूत्र प्रासुक होते हुये भी असेव्य है शिष्ट सम्प्रदाय में निंद्य है। अस्पृश्य है अशुद्ध है। शुद्ध्यर्थ अपना मूत्र भी बाहर पड़ गया तत्काल धो देने योग्य है। यों तो चढ़ाई जा चुकी सामग्री उच्छिष्ट भोजन (झूठिन) भङ्गी का बर्तन, मानवके लिये लहगा फरिया, चूडियां, गजरे, स्त्रीके लिये कोट, अगरखा, टोपी तथा खाड के बने कुत्ता, बिल्ली, मुर्गा, आदि भी प्रासुक हैं किन्तु अनुपसेव्य हैं अत त्याज्य हैं। तीव्र मान हिंसा भी है।

रत्नकरण्डश्रावकाचार की संस्कृत टीका मे श्री प्रभाचन्द्र आचार्य ने भी मल मूत्र लार आदि को प्रासुक माना है। वृक्ष म वनस्पतिकायिक जीव है किसी २ वृक्ष मे चार पाच गज लम्बी, चार पाच इ च चौडी, एक बटे आठ इ च मोटी पथरी, (गामा-ग्रावा) बन बैठती है इसम असरय पृथ्वी कायिक जीव है जैसे कि मिट्टी मिले गंदले पानी मे' पृथ्वीकायिक, जल कायिक दोनों जाति के जीव हैं। तद्वत् गाय शरीर म पचेन्द्रिय स्त्री वेदी, गर्भज एक जीव है। उसके मास तथा दुग्धाशय म असरव्य विकलत्रय हैं किन्तु दूध सर्वथा अचित्त है। इसी प्रकार सीप का मोती भी प्रासुक है। प्रासुकत्व और शुद्धता की व्याप्ति नहीं है "प्रगता असवो यस्मात्" दूर हो गये हैं प्राणी जिससे वह प्रासुक है प्रासुक होते हुये भी उगिलन, लार, झूठा छोड़ दिया भोजन अशुद्ध है। प्रासुक नही होते हुये भी हाथ, करभ, (पँचि से लेकर बाहरला छोटी अगुली तक मासल भाग) शुद्ध हैं हाथ के रक्त मास चर्म में विकलत्रय जीव हैं तो भी हम अपने हाथों से प्रतिमा स्पर्श, मुनिदान, भोजन करते हैं। करभसे लोटा उघकाकर पेशाबके हाथ धोलेते हैं। यह वस्तु स्थिति है घृणित पदार्थके प्रचारका भाव नहीं है।

जो जीवित शरीर का अवयव बन बैठे, वह सजीव है। बहिःकेश, पके नख, यद्यपि मूल शरीरके अव-

यनपन से दूर हो गये हैं। अत मूल जीव उनमे नहीं रहा है फिर भी अन्य विकलत्रयों के आधार होनेसे सजीव हैं, अशुद्ध हैं। दूध या मोती मे यह चर्चा लागू नहीं होती है वृक्षका सूखा पत्ता, पकाफल, प्रासुक है। कोई २ वनस्पति प्रथम अवस्था में अप्रतिष्ठित प्रत्येक रहती है फिर सप्रतिष्ठित हो जाती हैं। पुन सुखा देने पर, तपा देने पर, प्रासुक हो जाती है "सुक्कपक तत्त" हा त्रसशरीर वर्तमानमे कथमपि प्रासुक नहीं हो सकता है। त्रस शरीर का मास भी पर्यायान्तर धारण कर शुद्ध हो जाता है। विकलत्रय या पचेन्द्रिय जीव मर कर उनका शरीर कालान्तर मे शुद्ध पुद्गल बन सकता है। कायस्थिति का अवसर टाल दीजिये। खाये गये शुद्ध रोटी, दाल शाक, दही, घी चार या पाच घण्टेमें ये मास बन जाते हैं यवनों या बिल्ली आदि द्वारा खाया गया मास भी चार छः घण्टे म निर्जीव मल, मूत्र बन जाता है मरा बच्चा गाड़ दिया जाता है थोड़े दिनों म मिट्टी हो जाता है सुनते हैं कि अगूरों म रक्त का खाद लगाया जाता है किन्तु द्राक्षा तो शुद्ध है। तत्कालीन पर्याय पर भक्ष्य, अभक्ष्य व्यवस्था अवलम्बित है। पहिली पिछली पर्यायों को न विचारो। मास, टट्टी, पेशाब, चर्बी, हड्डी, गूथ सब खाद होकर दस दिन म तोरई, लौका, ककड़ी, खीरा बन जाते हैं। तोरई लौका खाया जाकर छः घण्टेम

मांस हो जाता है।

अचौर्य, स्वस्त्री-सन्तोष, व्रतोंमे भी तत्काल की पर्याय का लक्ष्य रक्खो। हमारी चीजें जन्मान्तरों मे दूसरोंकी हो जाती हैं उनको उठा लेनेमे चोरीका दोष लगेगा। तब हम अन्यकी वस्तुओंके स्वामी बन जाते हैं परिणीता स्त्री दूसरी पर्याय मे बहन बन सकती है। मा बेटी भी जन्मान्तर में स्त्री बन सकती हैं। बाप बेटा बन जाता है यहां तक कि स्वयं आप अपना बेटा बन जाता है। भक्ष्य भोजन को गले से उतरते ही स्वपर के लिये अभक्ष्य अवस्था हो जाती है। मुख म रखते ही दूसरे के लिये अभक्ष्य पर्याय हो जाती है। शहर का सब मल, मूत्र, कीच, मास, रक्त, सडी मोरिया बहकर म्यूनिस्पैलटी द्वारा निकटवर्ती खेतो मे डाली जाती है। वे कुछ दिनों में सुन्दर सरस फल, शाक, पुष्प, अन्न आदि त्याग-घर के व्रतियों या मुनियोंकी आहारदान सामग्री बन बैठती है। सामरकी झीलमे पड़गया कोई भी पदार्थ लवण बन जाता है। यों आचार शास्त्रके अनुसार वर्तमान पर्याय पर शुद्धि अशुद्धि व्यवस्था समझ ली जाय। यदि घृणा होय तो कुछ पूर्व की अवस्था अनुसार त्याग कर दो। यों आचार शास्त्र, स्वेन्द्रियज्ञान, सूर्य आलोक से प्रकाशित वर्तमान शुद्ध पदार्थ का भक्षण करना चाहिये वैद्यों ने तो मल को जीवनमूल मान रक्खा है।

"मलायत्त हिजीवन" (योगरत्नाकर)

"तित्थयरा तप्पयरा हलधर चक्काय वासुदेवाय,
पडिवासुदेव भोमा आहारो णत्थिणीहारो"।

तीर्थङ्कर और उनके माता पिता तथा बलभद्र चक्रवर्ती नारायण, प्रतिनारायण, भोगभूमिया इनके आहारहै नीहार (मलमूत्र) नहीं है। यह सिद्धान्तकी बात है। किंतु वैद्यों ने आधुनिक मानव के जीवितव्य में मल सद्भाव को कारण माना है। कुछ मल (विष्टा) मलाशय में रहना चाहिये। पूरा मल खिसक जाने पर जीवन सङ्कटापन्न हो जाता है।

अत एव सूक्ष्मनिगोदिया अपर्याप्त से लेकर केवल-ज्ञानी तक सभी जीवों के ज्ञान, सुख, लाभ, बल, भोग आदिमें वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम या क्षय हो जाना आवश्यक बताया है।

"वीर्यायत्त बल पुंसा" (यो० र०) आज कल के पुरुषों का बल वीर्याधीन माना गया है- कोई विरोध की बात नहीं है। पुरुष के शरीर में धातु रूप वीर्य और स्त्री शरीरमें रम रहा शोणित सचित हैं किन्तु गर्भाशय म पहुंच गये शुक्र और शोणित अचित्त है, ऐसा सर्वार्थसिद्धि और राजवार्तिक में योनि सूत्र की टीका म लिखा है। माता की गर्भ थैली म तो माता का पचेन्द्रिय जीव और क्षुद्र विकलत्रय विद्यमान हैं अत सचित्त है। जीवित गर्भाशय मे

पहु चकर पृथक् हुये शुक्र शोणित दोनों झट अचित्त हो जाते होंगे पुनः उत्पद्यमान जीव करके अहरियमाण हो जाने पर सचित्त हो जाते हैं। तावे के तारमें बिजली का करैण्ट अचित्त है। बटन दबा देने पर बल्ब मे झट असख्यात अग्निकाय के जीव उपज जाते हैं। दियासलाई अचित्त है रगड देने पर तत्काल अग्नि कायिक असख्य जीव जन्म लेलेते हैं। बुझ जानेपर सब मर जाते हैं। सूखे पक्के प्रासुक को भी नहीं खाने मे बडा इन्द्रिय-सयम पलता है।

"कामादि प्रभवश्चित्र कर्मबन्धानुरूपत,
तच्च कर्मस्व हेतुभ्यो जीवास्ते शुद्ध्य शुद्धित"।

आत्मा के पुरुषार्थ और कर्मों की गति विचित्र है। कदाचित् वैराग्य है, और बहुभाग राग परिणति है। देवोंके समान निकट भव्य सम्यग्दृष्टि नारकियों के भी कभी २ ऐसी भावनाएँ उपज जाती हैं कि कब मनुष्य जन्म धारण कर सयम पालन करू गा ? श्रेणिकचर महापद्मभावी जीवके तो अनेक बार ऐसी भावनायें हो रही होंगी। सम्यग्दर्शन के साथ सम्वेग, निर्वेद गुण लग रहे हैं। सम्यक्त्वी भोगोंके समान दु ख वेदनाओंको भी कर्मफल जानकर उदासीनता के साथ भोगते हैं। आत्म-तत्वपर लक्ष्य पहु च जाता है।

नारकियों का वैक्रियिक शरीर मात्र नरकायु वाले एक पंचेन्द्रिय जीव का आधार है अब शेपरीत्या अचित्त है

नरकों में सूकार, पीन, चर्बी, मेद, चूहे, गधा, ऊट कुत्ते का सडा मास आदि मरीखा घिनावना पुद्गल भरा है, जिसमे कि इतनी दुर्गन्ध आती है यदि वह यहा मनुष्यक्षेत्र म डाल दिया जाय तो दो दो, चार चार, दशदश कोष क जीवों को मार डालेगा। तथा अन्य वहा नरकोम तपायी हुई कढ़ाई या उष्ण लोह से भरी हुई डेगें हैं।

तथा वैतरणी नदी मे जो मलिन दुर्गन्ध द्रव बह रहा है ये सब अचित्त हैं इनमें कोई बादर एकेन्द्रिय या विकल-त्रय जीव नहीं है। नरकोंम पचेन्द्रिय जीव या एकेन्द्रियजीव ही है। नरकों मे भेडिया, बघेरा, कुत्ता, सर्प, बिच्छू, लट, कातर, क्लीला, कौआ, उल्लू आदि भयकर जीव पाये जाते हैं अथवा भाला लोहखी, तलवार, बर्छी, घन कोल्हू चाकी, कीलकशय्या त्रिशूल आदि जीव या अस्त्र शस्त्र पाये जाते है। ये सब नारकियों के किये गये एकत्व (अपृथक्) विक्रिया के शरीर हैं। उनम वैक्रियिक समुद्घात कर रहा केवल एक २ नारक पचेन्द्रिय जीव हैं अन्य सभी प्रकारों से अचित्त हैं नारकियों की अकालमृत्यु नहीं है। पृथक् विक्रिया नहीं कर पाते हैं।

इसी प्रकार देवोंके क्षेत्रों म भी बढ़िया पृथ्वी सुगन्ध-द्रव्य, उत्तम जल, नीरोग वायु पर्वत, नदी, खेत, बाग, सरोवरों म मात्र एकेन्द्रिय जीव हैं या अचित्त पदार्थ हैं। देवो

के यहा भी एकेन्द्रिय या पचेन्द्रिय जीव ही पाये जाते हैं। देवता अपने शरीर से भिन्नरूप से अश्व सिंह हाथी भ्रमर महल मडप कूप बावडी उपवन नदी सरोवर पर्वत आदि स्थानों की पृथक् विक्रिया कर लेते हैं।

देव अपृथक् विक्रिया भी करते हैं। उन सभी वैक्रियिक पदार्थों मे समुद्घात नामक प्रयत्न से देवों की आत्मा के प्रदेश भरे हुये हैं। अन्य सभी प्रकारों से वे अचित्त हैं। देव नारकियों का माम स्थानीय पदार्थ अचित्त है किन्तु अनुपसेव्य है, नारकी परस्पर मे कषायवश वैक्रियिक जीवो का अन्योन्य भक्षण कर जाते हैं उस मे जीव-वध सनथा नहीं होता है पीडित को दुःख होता है। परन्तु घातक को महती सकल्पजा त्रसहिंसा का तीव्र पाप चढ़ बैठता है वध्य को रौद्रध्यान से।

ये सब सचित्त अचित्त की व्यवस्था जो गोम्मटसार त्रिलोकसार मे बताई है उसका उद्देश्य जीवो को पहिचान कर उनकी रक्षा करते रहना है। हम लोगों के प्रमादवश भारी हिंसा हो जाती है, एक शौकीन लडका साबुन लगा र कर गरम पानी से नहा रहा है। साबुन से कपडे धो रहा है। इस कृत्य से वह शौकीन जीव करोडों त्रस जीवो को मार रहा है। गामों मे खेत या कच्ची छत अथवा रेत वाली भूमिमे पटा रखकर स्नान करते तो यह हिंसा अत्यल्प

हो सकती है किन्तु शहर की गन्दी सड़ी नालियोंमें असंख्य त्रस जीव बहरहे हैं उसमें उष्ण जल तीक्ष्ण क्षार साबुन के आते ही लाखों जीव तत्काल मर जाते हैं। जैसे कि तेजाब डालने से। इसी प्रकार मरगघन को रेत म या सूखे खेतमें डाला जाय तो अच्छा है। यदि मोरियोंमे बहा दिया जाय तो असंख्य जीव उपज कर मरजावेंगे। मोरी म सड़ रह एक चावल से पचास हजार द्रव्य लटें बन जाती हैं। अदृश्य त्रसों की गणना कठिन है यों घुन और पई खट-मल जूआ आदि को भी योग्य रक्षित असरण स्थान मे क्षेपना चाहिये।

एक बात यह भी समझ लेने की है कि अनन्तानु-बन्धी या सम्यक्त्वके संस्कार समान मिथ्यात्व का भी संस्कार बहुत काल तक प्रवर्तता है। गृहस्थ पुरुष जैसे उत्तरोतर सन्तानों द्वारा लाखों करोड़ों वर्षों तक जीवित रहना चाहता है। उसी प्रकार बैल, घोड़ा, कुत्ता, ततैया, मकड़ी, चना, गेहूं, आदि पर्यायें भी चाहे अनचाह उत्तरवर्ती पर्याय सन्तानरूप से चिर काल तक स्थिर बनी रहती हैं। यों ही जीव के सद्गुण, असद्गुण या स्वभाव विभाव पर्यायें संस्कार रूप से अनेक वर्षों तक धाराप्रवाह चलती रहती हैं कारणों द्वारा यथोचित उत्पाद व्यय ध्रौव्य भी होते रहते हैं कालाणुओं की स्वकीय वर्तना द्वारा प्रतिक्षण उत्पा-

दादि करते रहने की टेव ही पड गई है। एक इतर निगो दिया जीवके ढाई पुद्गल परिवर्तन काल तक अनन्त भवो में मिथ्यात्व का उदय बना हुआ है। यहा पूर्व मिथ्यात्वोदय के संस्कार भी उत्तरवर्ती अगृहीत मिथ्यादर्शनों मे पहुच रहे हैं।

जैसे कि एक रूमाल पर एक घण्टे में सौ वार इत्र छिडका जाय तो पूर्ववर्ती सुगन्धिया उत्तरवर्ती सुगन्धियों मे अपनी वासनायें जमाती रहती हैं। जल प्रवाहके समान परली ओर फंकते रहनेकी तलब जो ठहरी। प्रत्येक द्रव्य मे विद्यमान हो रहे अस्तित्व गुण की छाया से सभी अनन्त गुण त्रिकाल अस्तिरूप हैं। द्रव्यत्व गुण के तादात्म्य से सभी गुणोंका द्रवण होरहा है वक्ताका प्रभाव श्रोताओंपर और श्रोताओं की काति वक्ता पर पडती है। यों जैन सिद्धान्त मे छायावाद स्वीकार किया गया है। पूजन करते समय फटी मैली धोती, दुपट्टा, बुरीसामग्री, टूटे वर्तन, घिनामना स्थान ये परिणामों पर तत्काल अशुभ आक्रमण करते हैं। वढ़िया सुन्दर उपकरण विशेप शुद्धि करते हैं। पापसे शुभ राग अच्छा है यही क्रम रसोई घर, विवाह स्थल, दुकान, बाजार मे भी लगा लो। जगत् मे प्रभाव्य प्रभावक की सनक सर्वत्र छा रही है।

एक पर्याय या गुण दूसरे पर्याय या गुणस्वरूप नहीं

ी जाता है किन्तु गुण या पर्याय की दूसरोंपर छाया पड़ती है। और यो अविभागप्रतिच्छेद घट, बढ़ जाते हैं जैसे कि अहिंसा और अचौर्य के साथ यदि ब्रह्मचर्य है तो वह अकेले ब्रह्मचर्य से बहुत बड़ा हुआ है। खदिरसार भील की कथा पढ़ लो। एक व्यसन का त्याग और सातों व्यसनों का त्याग म भी ये ही चर्चा लगा लेना। एक मोती यदि पाच रुपये का है तो सदृश दो मोती बीस रुपये के हैं वैसे ही चार मोती सौ रुपये के हो जाते हैं। एक घोड़े से सदृश दो घोडों का मूल्य चौगुना होता है यदि वैसे ही बत्तीस घोड़े हों तो उनका मूल्य करोड़ों रुपये हो जाता है। इसी तरह से आत्मामें निवस रहे अनेक दोषों या गुणों की परिणतियों मे परस्पर प्रभाव डालना रूप क्रान्तिप्रसार से पुण्य पाप बन्ध म तारतम्य हो जाता है। प्राय सभी जीव पुद्गलोंम प्रभाव लेने देनेकी सहज टेव पड़ी हुई है। जाड़े म मरदाने की पटियों पर पाव धर दो वह आपकी गर्मी को चाटेगी बदले म आपको शीत दे देगी। तभी तो हम स्पर्शरोगी, दरिद्र, कुवचनी, मूर्ख, सर्प, कसाई, व्यभिचारी से दूर रहते हैं और सज्जन, धर्मात्मा विद्वान्, सदाचारी, त्यागी, जितेन्द्रिय भगवान् आदि का सत्संग करना चाहते हैं।

कारण कोई कल्पित नहीं या असत् नहीं, किंतु वस्तु-

भूत है। जब कि गुण या दोषो मे दूसरे गुण, दोषों के परस्पर प्रभावप्रसार से अविभागप्रतिच्छेद (शक्ति अंश) बढ़ गये हैं। भयस्थान पर जाते हुये एक की अपेक्षा दो और दो की अपेक्षा शस्त्रधारी चार को भय कम लगता है। प्रत्येक की आत्मा मे निर्भयता बढ गई है। अनुभव कर लो। अन्योन्य छायावाद डट रहा है। नौकर के साथ सेठ जी आये और सेठजी के साथ नौकर आया इन दो वाक्योंमे तारतम्य है। बासी तोरई की ताजी तरकारी और ताजी तोरई की वासी तरकारी के स्वाद मे इस ही कारण अन्तर पड गया है। दाल के साथ रोटी और रोटी के साथ दाल खानेमे भी कुछ विशेष रहस्य है। इस विषय पर बहुत नहीं कहवाओ विद्वानों के लिये संकेत मात्र पर्याप्त है। यों हम अचित घृणित लार, मूत्र, चाण्डालस्पृष्टभाण्ड छत वस्त्र आदिको सचित्त जल मिट्टी, अग्नि, वायु से शुद्ध करलेते हैं। यहां भी प्रमाणत्व प्रमेयत्वके समान कारणत्व का यंत्र घुस रहा है। यों अचित्तों को सचित्तों द्वारा बहु एकेन्द्रिय घात करते हुये पवित्र करे जाओ।

" " अष्टसहस्रीमें एक कारण से जितने कार्य होते हैं उतने स्वभावभेद उस कारण मे वस्तुभूत मानो इस मन्तव्य पर बहुत बल दिया है। दादोंम हलुआ, रबडी, पेडा, पूरी, लड्डू, चने, सुपारी, खानेके शक्त्यंश न्यारे २ हैं। हलुआ खाते

यदि सुपारी आ जाय तो आप चौक पड़ेंगे क्योंकि दातोंमे थोडी शक्ति लगा रसी थी धोखा दिया गया। छ महीनेमें एक इच बाल बढ़ते हैं वहां एक इच मे असख्याती उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालके समयों से भी अधिक प्रदेश हैं। छुरा हटा कर पुन शीघ्र वहीं छुरा फिराने में जितना काल लगता है उतने समय मे कटा हुआ बाल असख्यात प्रदेशों भर ऊपर उभर आता है। मृदग पर धम् के पश्चात् किट् बजाने मे असख्यात समय लग जाते हैं। इतने कालमें इन्द्र पाचो मेरुओं की वन्दना कर आ जाता है। श्वासके अठारहवें भागम भी आयुर्बंध योग्य आठ ही त्रिभाग क्या करोड़ों अरबों क्या, ठीक जघन्य असख्यात से बढ़कर भी त्रिभाग पड़ सकते हैं। जघन्यपरीतअसख्यात को बिरलन, देय, राशि रखकर आवली बनाई जाती है। लब्ध्यपर्याप्तक की आयु आवलि से अधिक है। जैसे दस हजार सख्या मे सौवें भाग दो और दसवें भाग चार, पाचवें भाग पाच और त्रिभाग आठ पड़ जाते हैं।

इसी प्रकार आवलि म असख्यातवें भाग जब जघन्य परीतासख्य प्रमाण हैं तो त्रिभाग (तीसरे भाग) तो इन से भी अधिक पड़ जाते हैं। आयुष्य कर्म का बन्ध कर्मभूमि के मनुष्य तिर्यंचोंके आदिम आठ त्रिभागोंमें ही अन्तर्मुहूर्त तक पड़ेगा। अन्यों मे नहीं। यदि आठ अपकर्षोंमें परभव

की आयु न बन्धे तो अप्रमत्तेपाद्धा मे अवश्य बन्ध जायगी देव और नारकियों मे अन्त के छः मासों तथा भोगभूमियों के अन्तिम नौ मासों में आठ त्रिभाग आयुर्बन्ध योग्य है। पहिले पिछले त्रिभाग अयोग्य हैं। जैन सिद्धान्तोंमे अनेक सूक्ष्म तत्त्व बताये गये हैं। परिशीलन करने वाला चाहिये। दश जन्मों तक वर्तमान उपलब्ध ही जैन वाङ्मय का अध्ययन करते रहो, अनेक नव्य भव्य प्रमेय रत्न हस्तगत होते रहेंगे। स्वाध्याय मे अलौकिक आनन्द प्राप्त होता है।

वितण्डा या कुचोद्य करनेमे नहीं। जो कुछ कहा गया है या कहा जायगा वह आगमोक्त ही है। हमारी गाठ का कुछ नहीं है आचार्यों पर उत्तरदायित्व है। तत्वों का ज्ञान ही उपादेय है। जगत् में ज्ञान सर्वोत्कृष्ट पदार्थ है। एकेन्द्रिय विकलत्रयों का छोटा सा ज्ञान भी महत्त्वपूर्ण कार्यों को करता है। हित प्राप्ति और अहित परिहार करना ज्ञान का ही कार्य है। "हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाण ततो ज्ञानमेव तत्"। ।(माणिक्यनन्दी)

इष्टप्राप्ति, अनिष्टपरिहार करने मे मन की मत घमीटो हा विचारक बड़े ज्ञान (श्रुत) सत्रियों के होते हैं। किन्तु छोटे श्रुतज्ञान सभी एकेन्द्रिय विकलत्रयों के हो जाते हैं। और सबसे बड़ा केवलज्ञान महाराज तो संज्ञी, असंज्ञी दोनों र नहीं होता है किन्तु उभयव्यपदेशरहित परमेष्ठी के

होता है। वहा विचार का कुछ काम ही नहीं है। अवधि और मन पर्यय म भी विचारणा नहीं है। मन इन्द्रिय का व्यापार भी नहीं है। सूर्य प्रकाश या मेघवत् प्रवृत्ति है। विचार करना परोक्ष ज्ञान है (प्रमेय कमल मार्तण्ड तर्क प्रमाण)। (प्रमेयरत्नमाला)

आजकल के कतिपय जैन कुछ छोटे मोटे ग्रन्थो का अक्रम स्वाध्याय कर अपने को भारी विद्वान् समझ बैठते हैं। किसी २ बात का तीव्र हठ करते रहते हैं। छोटे बडे सभी श्रोता स्वयम्बुद्ध बन रहे हैं। भ्रातृवर ! गुरु बिना ज्ञान त्रुटित रहता है। यह ज्ञानार्णव मे मयूर का दृष्टान्त देकर समझाया है कि मोर गुरु के बिना नृत्यकला सीखा है, अच्छा नाचता है, किन्तु गुरुशिक्षा के बिना नाचने म उसका गुह्य अग दीखता रहता है। अत ज्ञान, ध्यान, आचरण क्रियाओं मे गुरु की शिक्षा आवश्यक है। तीर्थङ्कर वत् जन्म से ही प्रत्येकबुद्ध उपजने की उनकी मान्यता शिष्ट सम्प्रदायमे आदरणीय नहीं है गर्हणीय है। जैनों में निगुरापन फैलता जाता है। तभी अनेक मार्ग बनते चले जा रहे हैं। निज को स्वयम्भू माने हुये अनेक मानव, या आधुनिक छात्र अपने शिक्षक गुरु का ना[illegible]
का गुणकीर्तन करने म [illegible]
हैं। यह दोष बहुत बुरा हैं।

यहां तक कि गाने बजाने वालों या अखाडे के छोकरो मे भी गुरुओं का आदर किया जाता है। भले ही गुरु गुड और कोई रूच, मानों चेला शक्कर हो जाय तो भी गुरु ने भावपूर्ण मनोयोग से शिष्य को सस्कृत किया है वह उपकार छोटा नहीं है। माता पिता गुरुसे ही अभिमान करना कृतज्ञता नहीं। कृतघ्नता है।

कोई भाई गाय के मास मे गाय सारिखे और भैंस के मास मे भैंस सदृश विकलत्रय जीव मानते हैं यह बात जचती नहीं, कारण कि भैंस गाय तो गर्भज ही हैं उनके मास रक्तस्थ जीवों को तत्सदृश कहना असमञ्जस है। यो तो मनुष्य के चर्बी, मेद मे भी मनुष्य समान विकलत्रय मानोगे तब सिद्धान्त से विरोध आवेगा, क्योंकि मनुष्य तो सञ्ज्ञी ही होते हैं। कर्मभूमि, भोगभूमि के या म्लेच्छ नर तो गर्भज ही होते हैं। हा सम्मूर्छन अपर्याप्त मनुष्य तो कर्मभूमि की स्त्रियों के गुप्ताङ्गोंमे बाहर चुपटे रहते हैं। तीसरी जाति के मर्त्य हैं ही नहीं। अत. त्रस शरीरों म तत्समान विकलत्रयों की मान्यता सिद्धान्त और युक्तियों की कसौटी पर ठीक नहीं उतरती हैं। यों बादरायण तुल्यता मानते रहने में कोई तत्व नहीं। कोई इनके मर्यादातिक्रान्त दूधमे भी तज्जातीय जीवों की कल्पना कर लेते हैं वह किसी प्राचीन शास्त्र में देखी नहीं।

कोई वैज्ञानिक वृक्ष वेलोंम पाचो इन्द्रियां मानते हैं। वैशेषिक तो मन भी मानते हैं। यह मानना असत्य है कि कोई पेड या वल्ली ठीक स्थान देख कर आगे सरकती है वृक्ष कीडोंको पकडते है, मनसे विचारते हैं छुई मुई छूते मुरझा जाती है। जड़, धन या खात की ओर जाती हैं ये सब एकेन्द्रिय की या पुद्गल-कृत परिणतिया हैं वेल अध पतन शील हैं अग्नि ऊर्ध्वगमनस्वभाव है। इस में थाख मन की आवश्यकता नहीं। वृक्ष वेलोंमे मात्र एक स्पर्शन इन्द्रिय है। कोई डाक्टर दही में जीव मानते हैं। दही जीवों के बिना नहीं जम सकती है यह कुयुक्ति है। कत्था, वरफ, साबुन, ववसर भी जम जाते हैं। दूध, दही म हम द्वारा पृथक् करने योग्य चैंथड़े से होते हैं उनको जीव मान लेना अनुचित है। रक्त, मास, नारगरस, चर्म, कफ, फलरस इनम भी चैंथरा होते हैं रेशों को जीव न मानो, या दही शुद्ध है अचित्त है। वृक्षो, पत्तों, तृणों में भी स्नायुयें हैं। वे त्रस जीव नहीं हैं।

कोई आग्रही श्रोता किसी देश काल मे पड़ गई रूढि को छोडते नहीं हैं चाहे वे रूढ़िया इस युग म धर्म की क्षति कर देवें। यों जैनों म बाहर से आई कतिपय मिथ्या रूढ़िया पनप गई हैं। इन हठों ने श्री महावीर स्वामी के ठोस, उदार, स्याद्वादाङ्क शासन को छिपा दिया

है। जैसे कि कोई श्रोता ज्ञान में प्रतिबिम्ब पड जाना मान बैठे हैं कि तीनों काल के पदार्थों का केवलज्ञान म आकार (तसवीर) पड जाता है। भला इस अज्ञानका भी कोई पार है जब ? भूत भावी पदार्थ हैं ही नहीं तो ज्ञानमें प्रतिबिम्ब कैसे पड सकता है ? विद्यमान मूर्त का मूर्त में ही बिम्ब पडता है, अमूर्त मे नहीं। जैन न्याय-शास्त्रों मे इस बौद्धों के साकार-वाद का बहुत खण्डन किया है। "साकार ज्ञान निराकार दर्शनं" यहा आकार का अर्थ ज्ञेय का विकल्पनात्मक उल्लेख करके समझना समझाना है प्रतिबिम्ब पड जाना नहीं। प्रतिबिम्ब या छाया तो पुद्गल की पर्याय है।

> आकारोर्थविकल्पःस्यादर्थ' स्वपरगोचरः,
> सोपयोगो विकल्पोवा ज्ञानस्यैतद्धि लक्षणम्।
> नाकारः स्यादनाकारो वस्तुतोनिर्विकल्पता,
> शेषानन्तगुणाना तल्लक्षणं ज्ञानमन्तरा।
>
> (पचाध्यायी)

इसी प्रकार जिनपूजन, स्वाध्याय, तीर्थयात्रा, ध्यान करने मे भी कोई आलसी कह देते हैं कि भाई कर्मोदय होगा तो पूजन, ध्यान करलगे। भला क्षायिक-सम्यक्त्व, महाव्रत, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी पर चढ़ने के भी क्या कोई क्रम नियत है ? एक सौ अड़तालीस कर्मों मे

से बताइये ? । मनोगढ़न्त बातें अच्छी नहीं ।

क्षायोपशमिक भावों में अत्यल्प देशघाती का उदय समझ लो, पारिणामिक भावों में तो कोई कर्मोदय नहीं है। कर्मोंकी मात्र उदय अवस्थासे हुये कार्यों को कर्मजन्य मानो। आत्मा के घोर प्रयत्न करने पर हुई कर्मों की क्षयोपशम, उपशम, क्षय दशाओं से उपज गये भाव तो महान् पुरुषार्थ हैं इनको कर्मों से हुये नहीं समझ बैठना । प्रत्युत कर्म इन के विघातक हैं । प्रतिबन्धक या विघ्नसक को कारक नहीं मानना चाहिये । इत्यादि । कतिपय बाह्य धार्मिकक्रियाओं परभी क्वचिद् कषायें बन जाती हैं । कोई स्वज्ञेयातिरिक्त को सुनना भी नहीं चाहते हैं प्रामाणिक शास्त्रों को दिखा दो तो भी अपना आग्रह नहीं छोड़ते हैं । इनका भगवान् बेली है । जिनः पायात् ।

जिज्ञासु भ्रात ! जिस प्रकार ज्ञान का अव्यवहित फल अज्ञान की निवृत्ति हो जाना है और हेय का हान करना उपादेय का ग्रहण कर लेना तथा उपेक्षणीय में राग द्वेष न करना ये आनुषङ्गिक फल हैं । उसी प्रकार मिथ्यात्व, अन्याय, अभक्ष्य का त्याग कर देना, सप्तव्यसनों की आखड़ी, आठ मूलगुणों का धारण, देवदर्शन, दया, जिनपूजन, मुनिदान, प्रतिष्ठा करना, तीर्थयात्रा करना, जाप्यदेना, स्वाध्याय, अनुप्रेक्षा-चिन्तन, धर्म्यध्यान,

व्रतों को धारना, पाच समिति पालना, दीक्षा, केशलोच, उपवास, कायक्लेश, कषायनिग्रह, इन्द्रियदमन, गुप्तिया, उत्तम क्षमा, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, सत्य, प्रायश्चित्त, प्रभावना, वात्सल्य, परोपकार, कृतज्ञता, परीषहजय, शान्ति, उपेक्षा आदि धार्मिक आचरणों का प्रधान फल भी कर्मोका सवर हो जाना और सचित कर्मों की निर्जरा होना है। जितना निवृत्ति अंश है उससे दुष्कर्मों का सम्वर होगा तथा जितना योगनिरोध या इच्छानिरोध भाग है उस तप के द्वारा कर्मों की निर्जरा होगी।

हा प्रवृत्ति अश से पुण्यास्रव हो जाता है वह गौणफल है। लेश्या से थोडा पापास्रव होगा भी तो इसमें स्थिति और अनुभाग अत्यल्प, नगण्य पडेंगे। तभी तो सम्यग्दर्शन के अभिमुख हो रहे सातिशय मिथ्यादृष्टि जीव के सम्यक्त्व की उत्पत्ति, श्रावक, मुनि अवस्था, उपशमश्रेणी, क्षपकश्रेणी आदि दश स्थानोंमे असख्यात गुणी निर्जरा हो कर शीघ्र ही कर्मों का क्षय हो जाता है। डेढ गुण--हानि प्रमाण अनन्तानन्त सचित कम क्या यों ही क्रीड़ा मात्र में कट जायेंगे? कभी नही। इसके लिये मुनि को भारी पुरुषार्थ करना पड़ता है। इन गुणस्थानों में वर्त रहे धर्म्यध्यान शुक्ल ध्यानों करके नितान्त कर्मों का सम्वर और निर्जरा होते हैं।

देखिये सातिशय मिथ्यादृष्टि के अपूर्वकरण अवस्था मे अनन्तानन्त कर्मों की निर्जरा हो जाती है। फिर अनन्तानन्तको दस स्थानोंपर असख्यात गुणा करनेपर सर्वसंचित द्रव्य कर्म प्रतिक्षण झड कर क्षय को प्राप्त हो जाता है। यों मुमुक्षु जीवका चरमलक्ष्य मुक्ति–लाभ कर लेना धर्म-सेवनसे बन जाता है।

सूर्यकी तो मात्र बारह हजार किरणें हैं किन्तु धर्म की असख्याती किरणें हैं। जो कि आत्मस्वरूप की प्रकाशक हैं। मुक्त के अरहन्त आदि आठ देवता यहा ही छूट जाते हैं परन्तु प्रकाश्य प्रकाशक रूप आत्म–स्वरूप नौवा धर्म देवता अनन्त काल तक स्थिर रहेगा।

आजकल इस निकृष्टकाल मे अनेक मुनि और श्रावक धर्म-पालन कर रहे हैं वे केवल स्वर्गों मे ही जायँगे। पञ्चम काल के अन्त मे तीन वर्ष साढे आठ महीना शेष रहनेपर तकभी मुनि आर्यिका, श्रावक श्राविका पाये जायगें। ये चारों भव्यजीव बिचारे छठे पाचवें गुणस्थानवाले भावलिंगी है तो भी प्रथम स्वर्ग मे ही जायगे। वहा के रागपूर्ण ठाट नाचना, गाना, स्नानकरना, देवागनाओंके साथ स्पर्श आदि प्रवीचार, अनेक वन समुद्र द्वीपोंमे सैर करना आदि चेष्टाओं मे असख्याते वर्षों को पूरा कर देंगे।

हां सम्यग्दृष्टि देव तो बड़ी भक्ति से जिनपूजन भी

करते हैं। गाने, बजाने, नृत्य करने की परिपूर्ण कलाओं का अभिनय करते हैं। इसी लिये तो प्रत्येक विमान मे अकृत्रिम चैत्यालय हैं। प्रत्येक मन्दिर में १०८ वेदिकायें हैं। उनमें पाच सौ धनुष की मूलनायक रत्नमय प्रतिमा जी विराजमान हैं। प्रत्येक सूर्य, चन्द्रमा, ताराओं मे भी एक एक जिन-मन्दिर अवश्य है। यो असख्याते अनादि सिद्ध जिनमन्दिर हैं। देवों के धर्मआराधना मे रागभाव अधिक हैं।

यहा जिनालयोंम गायन, वादित्र, नृत्य, पूजने, प्रक्षाल जाप्य, धूप, दीपक आदि के विशाल परिकर हैं। तदनुसार यहा भी मन्दिरजी को सजाने के लिये बढ़िया उपकरण, मुकुट, आभूषण, सुन्दर वस्त्र, चंदोआ, आसा, परदा, छत्र चमर, मालायें, मजीरा, ढोलक, लकड़ीके रथ, हाथी, घोडे पट, पटा, चौकी, पथावरे आदि परिच्छद हैं। ये सब शुभ राग हैं। राग ही से राग मिटता है। ठण्डा लोहा गरम को काटता है। विष विषको मार देता है। अशुभ से शुभ अच्छा है। चरम लक्ष्य शुद्धता सर्वोपरि है। अकृत्रिम चैत्यालयों मे बड़े ठाट लग रहे हैं। नदीमुख और समुद्र सङ्गम के तोरण द्वारों पर ऊपर या नदी-पात गिरिगृहों पर सिंहासनोंम अथवा चैत्य वृक्षोंके नीचे जो प्रतिमा विराजमान हैं वहा प्रातिहार्य मङ्गल-द्रव्य, मालायें, धूप—घट,

देवच्छन्द, घण्टाजाल, स्तूपादि लम्बा चौड़ा व्यूह नहीं है स्वल्प है एक प्रतिमा जी विराजमान है। एकान्त प्रिय उदासीन देवों या ढाई द्वीप के ऋद्धिधारी मुनियों का ऐसे एकान्त धर्मस्थलों में अच्छा मन लगता है। चलचित्त विनोदियों का नहीं।

बात यह है कि आत्मा के चारित्रगुण की क्रोध अरति भय जुगुप्सा शोक द्वेष रौद्र वेद सुदुर्भक्तिमय सङ्कर विभाव रली मिली परिणतिया हो रही है। आज कल क धर्म-सेवन तीव्र राग-द्वेषकी कीचड़से सने हुये है किसी का धर्म सेवन बड़ा महगा पड़ता है। ऐसे धर्म को धर्म शब्द से कहनाभी खटकता है। वस्तुत शुद्धतापूर्ण धर्म तो कर्मों के सम्वर निर्जरा का हेतु है। लौकिक सुखाभासों को धर्म का फल कहना ही जिनधर्म का अनादर करना है। धर्म का पूर्वरूप या आभास कह लो।

भावपाहुड म श्री कुन्दकुन्दाचार्य ने बहुत अच्छा प्रतिपादन किया है—

पूयादि सुवय सहिये पुण्ण हि जिणेहिं सासणे भणिय।
मोहक्खोह विहीणो परिणामो अप्पणो धम्मो॥
सद्दहदिय पत्तेदिय रोचेदिय तह पुणो विकासे हि।
पुण्ण भोय णिमित्त, नहि सो कम्मक्खय णिमित्त॥

इन दोनों गाथाओं का अभिप्राय स्पष्ट है कि पुण्य

तो मोग का अव्यभिचारी कारण है कर्मक्षय का निमित नहीं।

इस अधम पञ्चम काल में जैनधर्म पालना बड़ा कठिन हो गया है। राग द्वेष की अत्यन्त न्यूनता हो जाने पर ये महावीर का धर्म पलता है। आधुनिक मनुष्यों में ब्राह्मण तो ईश्वरकर्तृत्व पर श्रद्धा, वेदोंपर अटल रुचि तथा अहिंसा ब्रह्मचर्य अपरिग्रह का पूर्ण तया न पाल सकना, देव-द्रव्य खा लेना, शक्ति की पूजा आदि कारणों के वश वे आर्हत धर्मसेवन से दूर हट गये। कतिपय तो विरोधी बन बैठे। क्षत्रिय भी इन्द्रियलोलुपता हिंसा अभक्ष्यभक्षण रात्रि-भोजन आदि प्रयोजनों के वश होकर वीतराग धर्म को स्वेच्छा प्रवृत्ति का बाधक समझने लगे। साथ ही उनको इन्द्रिय-विषय पोषक धर्मशास्त्र मिल गये तो जिनशासन को भारी बन्धन साकल मानने लगे। म्लेच्छ या शूद्र विचारे अपनी अधम आजीविका सन्तानक्रमागत अनाचारोंसे जकड़ रहना त्याग करनेकी अशक्ति आदि कारणों के अधीन होकर उच्च धर्म की ओर दृष्टि भी नहीं डालते हैं। बहुभाग वैश्यों की भी धर्मोदासीनता के ये ही कारण हैं। शेष रह थोड़े से वैश्य जो आजकल दिखाऊ जैनधर्म को पालते दीख रहे हैं। उनकी सैकड़ों पीढीसे वाणिज्य करने की आजीविका चली आ रही है।

प्राय वाणिज्य मे लोभ अधिक होता है। लोभ के साथ माया तो नितान्त लगी ही रहती है। तथा धन मान को भी बढ़ाता है। धनोपार्जन के आगे पीछे क्रोध की चासनी चुपकी रहती है यों आजकल के कषायरागी जैन वैश्यों मे महावीर स्वामी का वीतरागशासन पनपने नहीं पाता है। कषायोंसे प्रकृति निष्ठुर बन जाती है। अन्यथा क्या हेतु है कि इतनी सभायें, संस्थायें, विद्यालय, गुरुकुल छात्रालय, पाठशालायें, उपदेशक, मासिक-पाक्षिक-साप्ताहिक पत्र संघ, त्यागि, पण्डितवर्ग परिषद आदि होते हुए भी इस परमपवित्र सार्वभद्र जिनशासन की यथोचित उन्नति नहीं हो पाती है। श्री समन्तभद्र आचार्य ने ठीक कहा है कि—

काल कलिर्वा कलुषाशयो वा,
श्रोतु प्रवक्तु र्वचनानयो वा।
त्वच्छासनैकाधिपतित्वलक्ष्मी—
प्रभुत्वशक्ते अपवादहेतु ॥

हा थोड़ेसे अगुलियोंपर गिनने योग्य मन्दकषायवान् जीव यदि समन्त-पवित्र आर्हत धर्मको पाल रहे हैं। त्रिलोकीधर्म का इनसे क्या पूरा पड़े। तभी तो गोम्मटसार म सम्यग्दृष्टि मानवों की सख्या अत्यन्प कही है। करोडों मे एक दो।

जब कि आजकल इस कलिकालमें ब्राह्मणों के समान जैनो मे कोई धार्मिक-वर्ग नियत नहीं है। तथा कोई ईसाई या यवनों के समान आज्ञावश-वर्तक गृहस्थाचार्य भी नहीं है। ऐसी दशा में आधुनिक जैन विचारे करें भी क्या? । अस्तु-उद्योग करते जाओ सस्थायें भी कार्य करती रह परिश्रम फल भी मीठा निकलेगा ही। आर्य-समाजियों की नकल करना छोडो प्राचीन गृहस्थाचार्य या गुरुओंकी परिपाटीको पकडो। जैन-धर्म इतना निर्बल नहीं है जो अपनी प्रभावना करने में अन्यमतियो की सरणि को अपनावे। दूसरे हमारा ही अनुकरण क्यों न करें। निर्बलता को हटाकर आत्म-गौरव स्थापन करो। पूज्य जैनाचार्यों के बनाये ग्रन्थ न्याय, व्याकरण, साहित्य आदिके अध्ययन अध्यापन को बढाओ, परत्वको निकाल बाहर करो।

धर्म तत्व बडा दुरूह है। जैनों के छोटे छोटे मतभेदो को सहन करो प्रमोद-पूर्वक दूर भी करो, ग्लानि करने की टेव छोडो, जगत् परिवर्तनशील है, इन पन्द्रह वर्षों मे अथाह विपरिणाम हुये हैं।

अध्येत ! विक्रम सम्वत् के यदि तीन भाग हो चुके माने जाय तो प्रथम भागमें यहा ब्राह्मणों का राज्य रहा। अब भी महन्त, गोस्वामी बनारस के पण्डितों का बना-

ह्मणों से घृणाभाव, मद्रास प्रान्त म ब्राह्मणों के मार्ग से अब्राह्मणों की गलिया न्यारी न्यारीं, परडाओंकी घरड-प्रकृति, यों छाया दीख रही है। द्वितीय भागमें क्षत्रियो का राज्य रहा वे ईश्वरांश माने गये। अब भी खण्डरूप से शासक राजगण यहा वहा फैले हुये हैं। तृतीय चरण मे वैश्यों की प्रभुता रही अधिकारीवर्ग, राजा, सम्राट् भी वैश्यत्व म रङ्ग गये। धनकी प्रतिष्ठा सातिशय बढ़ गयी। धनपति-जन सर्वेसर्वा बन गय। अब चतुथ वर्णका राज्य होता दीखता है। श्रीवीर प्रभु क जैन धर्म की प्रभावना अतीव दुर्लभ होती जा रही है। "जयतु त्रिलोकी-हितो जिनधर्म" चाहें तो चारों वर्ण क्या सभी म्लेच्छ, पशु, पक्षी भी जैनधर्म को पाल सकते है।

बन्धुवर्ग! धर्म के समान पाप भी अनादि है पौने दो घडी बड़ा भैया है। वसुराजाकी कथा ... श्री महावीर स्वामी के प्रथम से ही ... बहुत प्रचार था। ... भी वेदि ... अश्वमेघ, अजमेध ... यान सम्प्रदायो ... बहाना लेकर अ ... हो ... वर्षोंसे ...

हिंसा आदि पापोंमे आनखशिख डूब रहे हैं। पहिले देशों मे छोटे छोटे प्रातिक राजा थे दिन रात परस्पर लड़ाई मे ही निमग्न रहते थे। युद्धों मे नवीन चुने हुये युवाओं की मृत्युयें बहुत होती थीं। सती दाह-प्रथा चालू थी। ऐसे वध, हाय, हत्या, के युगों में अहिंसामय शान्ति-प्रिय जैन-धर्म का टिकना नितान्त दुर्लभ हो गया था। जब तक विरोधिनी हिंसा करते रहने का प्राबल्य रहा स्वरक्षार्थ-विरोधियों से लड़ते हुये भी धर्म-प्रभावना बनी रही। जैनोंमे बड़े बड़े योद्धा हो गये हैं। उन्हींकी कृपा से आज तक जैनधर्म टिक पाया है। अब भी ऐसा युग आ गया है कि वीर जनता ही वीरप्रभु के धर्मकी रक्षा कर सकेगी। अत बच्चों को छठे वर्ष से इक्कीस वर्ष तक अध्ययन के साथ व्यायाम-शालाओं मे शारीरिक बलवर्द्धिनी शिक्षायें अनिवार्य कराई जावें।

यह जैनधर्म महान् पवित्र सार्व अनादि अनन्त है। अतः विरल अविरल रूप से चिरस्थिर रहेगा। स्वकल्याणार्थी दृढता के साथ जैनधर्म को पकड़े रह। माया, मिथ्यात्व, निदान, तीनों शल्यों को निकाल फैंक दो। वर्तमान जैन अपने धर्म की प्रभावनार्थ असली ठोस पुरुषार्थ करें। "धर्मो जयति नाधर्मः"

कोई २ भोले जैन बाहुबली स्वामी के शल्य होना

स्वीकार करते हैं। किसी सूत्र में भी लिख दिया है। उनका मन्तव्य है कि बाहुबली के यह शल्य लगी हुई थी कि मैं भरत की पृथ्वी पर खड़ा हूं भरत ने मुझे मान्य नहीं किया आदि। किन्तु यह मान्यता सिद्धान्त विरुद्ध है। क्यों कि दूसरों की पृथ्वी पर खड़े होने या बैठने चलने का परामर्श करना ही मुनि के लिये निषिद्ध है। दूसरे बाहुबली जब तीनों युद्धों में जीत चुके थे तो वह पृथ्वी भरत की कैसे रही ? बाहुबली की हो गई। तत्वार्थ सूत्र में "नि शल्यो व्रती" कहा है। "धारयते नि शल्यो योसौ व्रतिनाम् मतो व्रतिक" (समन्तभद्र)। शल्य वाले के जब अणुव्रत ही नहीं हो सकते हैं तो महाव्रत हो जाना असाध्य ही है। हां कभी २ छठे गुणस्थान में बाहुबली के ये भाव हो गये थे कि मेरे द्वारा मेरे बड़े भाई को क्लेश पहुंचा। ऐसे कदाचित् अनुताप तो सभी मुनियों के हो जाते हैं। तभी तो वे अज्ञान या प्रमाद से एकेन्द्रिय आदि जीवों को क्लेश हो जाने पर आलोचन, प्रतिक्रमण कर लेते हैं। ये तो मुनि की दिन रात्रि की चर्या है। मुनि ये विचार सकते हैं कि मैंने गृहस्थ अवस्था में फलाने २ को कष्ट पहुंचाया, अमुक पाप किया। कषाय भावों को धिक्कार हो, आदि ये वैराग्यवर्धक भाव हैं। शल्य अवस्था में उच्च धर्म्यध्यान और क्षपक श्रेणी कैसे भी नहीं हो सकती है।

भरत मुझको नमस्कार करें ये भाव उनके तीनो कालो मे न थे।

भरत जी ने नमस्कार किया तब उनको केवल ज्ञान हो गया ये तो घुणाक्षरन्याय का रूपक है। जैसे कि श्री महावीर स्वामी के मोक्ष जाने पर गौतम स्वामी को केवल ज्ञान हो गया। गौतम स्वामी के मोक्ष जानेपर सुधर्माचार्य को केवल ज्ञान हो गया। सुधर्माचार्य के मुक्त होने पर झट जम्बू स्वामी को केवलज्ञान हो गया। इनमे मात्र कालिक सम्बन्ध है कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है अत बाहुबली स्वामी सर्वथा नि शल्य थे। भावलिंगी हो कर एक वर्ष तक घोर तपस्या कर केवल-ज्ञान प्राप्त किया। "नमोस्तु ते बाहुबलिने आदीश्वरशिक्षितपुत्राय"

इसी प्रकार सीता राजीमती के कतिपय बारहमासे बनाये हैं। किसी २ मे "काम सतावै" आदि निर्लज्ज शब्द प्रविष्ट कर दिये ह। यह सब अवर्णवाद हैं। इन निकट-भव्य धर्मिणियो को स्वल्प निमित्त मिलते ही संवेग निर्वेद भाव हो गये थे। जैसे कि नागपाश-बद्ध इन्द्रजीत कुम्भकर्ण के कारागृह में पडते ही उत्कट वैराग्यभाव चमक गये थे कि कब कारामुक्त होंय और शीघ्र जैनेश्वरी दीक्षा लेवें। अङ्गद आदि ने कहा कि इन्द्रजीत को बडे बन्धन प्रबन्ध से रामचन्द्र लक्ष्मण के पास ले चलो। ये बड़े

क्रूर है पिता की मृत्यु सुनते ही लाखों को काट डालेंगे। किन्तु जब रामचन्द्रने सशिष्टाचार इन्द्रजीत कुम्भकर्ण को बुलाया, तो वे ईर्यासमिति पालते हुये राजदरबार में आये रामचन्द्र जी उठकर सादर लाये राज्य सम्हालनेको कहा। किन्तु सर्वोत्कृष्ट मुक्ति-राज्य प्राप्त करनेके लिये शीघ्र वनमें जाकर उनने दीक्षा धारण करली और बड़वानी पर्वतसे मोक्ष प्राप्त की। 'इन्द्रजीत कुम्भयणो णिव्वाण गया णमो तेसिं' यों राजीमती, सीता, अञ्जना, द्रौपदी, सुलसा, चन्दना आदि में बड़े पवित्र भाव थे। मन-वचन काय में कदापि का-मोद्रेक की बातें न थीं। "कस्य किंन जल्पन्ति"।

केवलज्ञानी के क्षुधा आदि अठारह दोष नहीं हैं शेष सभी ससारी जीवोंमें तीव्रतम तीव्र या मन्द मन्दतम रूपसे ये दोष पाये जाते हैं, नारकियों के तीव्र भूख है देवों के मन्दतर है। सर्वार्थसिद्धि के देवों को भी भूख लगती है भले ही वे तेतीस हजार वर्ष पीछे कण्ठस्रुतामृत सरसों बराबर आहार करें, किन्तु क्षुधा वेदनीय का उदय सर्वदा है, उदीरणा कदाचित् है। किसी असकृत् गरिष्ठ-भोजी धनाढ्य को भूख कम लगे तो क्या दोष छोटा हो गया? नहीं।

इसी प्रकार अहमिन्द्रों के वेद-उदय अनुसार मन्द मैथुन भी है चारों सज्ञायें हैं। एकेन्द्रिय विकलत्रयों के भी

मैथुनसज्ञा है। वेद-कर्म के उदय या उदीरणा के साथ इन्द्रियों की विषय-लोलुपता ही मैथुन है। तथा देवों के अव्यक्त रूप से बुढ़ापा, रोग, भय, चिन्ता, विस्मय आदि भी पाये जाते हैं। तभी तो अरहन्त के अठारह दोषों से रहितपन की महत्ता है। एकेन्द्रियो के तो ये सभी दोष विद्यमान हैं।

अरहन्तों म पूर्ण अहिंसास्त्र है। द्रव्य भाव अहिंसा ही उत्कट धर्म है। मुनि के सङ्कल्पजा त्रसहिंसा, स्थावर-हिंसा, दोनों का त्याग है साधु के उद्योग, विरोध, आरम्भ तो है ही नहीं। हा श्रावक के मात्र सङ्कल्प-जन्य त्रसवध की छोड है। सङ्कल्प से स्थावर हिंसा करता है उद्यम, विरोध, आरम्भ म भा स्थावर हिंसा, त्रसघात हो जाता है। यताचार पूर्वक प्रवृत्ति है। निर्गल चेष्टा नहीं। "सङ्कल्पात्कृतकारित" (रत्नकरण्ड)

एतदर्थ ही जीवकाण्ड में जीवो, योनियो, जन्मो, कुलों का परिज्ञान कराया है एकेन्द्रिय जीवोंम सबसे बडा पद्म है जो कि स्वयम्भूरमण द्वीप के परले भाग मे स्थित सरोवर मे कुछ अधिक छोटे एक हजार योजन ऊ चा है। श्री देवीक निवासस्थान हो रह पद्मसरोवर का कमल पृथिवी-कायिक है जो वड वनस्पति-कायिक कमल से पाच गुना ऊ चा है।

किसी भी पृथिवीकायिक जीव की बड़ी छोटी अव–गाहना घनागुल के असख्यातवें भाग है इस असख्यातवें भाग मे ही मध्यम, छोटी बड़ी अवगाहनाओं का अन्तर निहित है। यो श्रीदेवी के कमल म असख्यातासख्यात पार्थिव जीव विराजित हो रहे हैं जैसे कि सैकड़ों लड़ रहे क्रोधी चींटा चाटियों का भुण्ड बध जाता है मैंने ऐसे पचासों गुच्छे देखे हैं। सुईपर रखने योग्य जल या तैल के कण म असख्याते जीव हैं। स्वयम्भूरमण द्वीप के कमल मे केवल एक वनस्पति–कायिक जीव है।

एकबात यह भी कहनी है कि मिथ्यात्व, हिंसा करना भूठ, परिग्रह आदि पाप और इन क्रियाओं से बन्ध गये कर्म भी अनादि से चले आ रहे हैं और अनन्तकाल तक पहुँचेंगे। आठ वर्ष कम अनादि काल से मोक्ष–मार्ग भी चालू है। कोई ऐसा मर्द शक्तिशाली आत्मा नहीं हुआ जो कि इन पापों या पापोंकी जड कर्मपिण्डको ही समूल चूल विनाश कर देता। यह कार्य अनन्तानन्त बलशालियों करके भी अशक्यानुष्ठान ही रहा, देखो पुद्गल परमाणु और सिद्ध भगवान् दोनों की शक्ति अनन्तानन्त रूप से समान है। पुद्गल परमाणुयें या स्कन्ध भी सख्या में जीव-राशि से तो अनन्तानन्त गुणे हैं। फिर कोई अ–हमिन्द्रदव या तीर्थंकर महाराज अथवा सभी सिद्ध परमेष्ठी

मला कर समग्र अणुओं या बाईस प्रकार की वर्गणाओं का अपने अनन्तवीर्य से प्रलय भी नहीं कर सकते हैं। यदि शुद्ध परमात्मा सभी पुद्गलों या क्रम से कम जगद्वर्ती कर्म और नोकर्म वर्गणाओं को भी विनष्ट कर देते तो सब जीवों के ससार परिभ्रमणका बखेडा ही मिट जाता यह तो बडा भारी परोपकार था।

वैशेषिक या पौराणिकों के यहां माने गये सर्व-शक्ति-शाली परमात्मा के बूते भी यह धर्म, अधर्म का प्रचय नहीं हो सका। शक्तिशाली बहुसख्यावालों के सन्मुख बल-शाली अल्प-सख्यको का मनोरथ सिद्ध नहीं होने पाता है थोड़ी सी कालाणुओं को मिटा देने से ही भव-झंझट दूर हो जाती, वर्तना नहीं हो पाती। आत्मा और कालाणुकी बुद्धिस्थ कुश्ती करायी जाय तो बहुत देर तक लड़ते लडते जोड़ बराबर छुड़ा दिये जायगे "को चालेदु सक्को इन्दो वा अह णिंदा वा" ऐसा आचार्य वाक्य है आचार्य ने जिनेन्द्र की भी सामर्थ्य नहीं ऐसा स्पष्ट कह दिया है। वस्तुत ये द्रव्य अनादि अनन्त नित्य अवस्थित हैं। कोई व्यक्ति या कोई समुदाय किसी भी एक या अनेक द्रव्यका मटियां मेट नहीं कर सकता है। असम्भव है इस कार्य को करने मे सभी अशक्त हैं।

मात्र अपना लोटा छानो स्वकीय व्यक्तिमें चुपट, बैठे

कतिपय अनन्तानंत कर्मों का स्व-पुरुषार्थ से क्षय कर दो अर्थात् अपनी आत्मा में जो युक्त हुए पुद्गलों की कर्म नोकर्म परिणति को बदल कर अन्य पुद्गल स्वरूप हो जाने दो। यही बड़े उत्कट प्रयत्नसे माना गया व्यक्तिगत मोक्ष है। उन अपने पर आ लगे हुये पुद्गल को असत् कर देना या बरबाद कर शुद्ध द्रव्य का सर्वांगीण खो देना तो मुक्त जीव कथमपि नहीं कर सकते हैं। सोनी या न्यारिया निर्धान मलिन कपड़े से या सोने से मैल को पृथक् कर देता है यों मैल की अन्यस्थान पर दूसरी पुद्गल पर्याय हो जाती है। मैल का मटिया मेट नहीं कर सकता है। जला दो, उड़ा दो, गाड़ दो, काट दो, पीस दो, तो भी मैल का पुद्गल द्रव्य विद्यमान है।

बन्धुओ! जिस प्रकार पचाने वाली उदराग्नि और खाद्य-पेय का धारा-प्रवाह सम्बन्ध अविच्छिन्न है उसी प्रकार योग और कर्म-नोकर्मों का आकर्षक आकर्ष्य सम्बन्ध भी अटूट है। अतः अनादि कालीन प्रवाहित चले आ रहे कार्य कारण भावपर कुचाद्यार्कों के मत गिराओ "आद्यन्तं नादव्य"। यत्न से अपने पापों को टालो जैनसिद्धान्त को जान कर आत्म श्रद्धा, आत्मानुभव और आत्मचर्या से निश्चय मोक्ष मार्ग में लग पड़ो। तभी कर्मों का संवर और निर्जरा होकर मोक्ष पा सकोगे, यही धर्म

पालन का लक्ष्य है। जगत्में सब से बड़ा पुरुषार्थ-पूर्वक किया गया यह महान् कार्य है। कोई भी पुद्गल चाहे परमाणु या वर्गणाय अथवा स्कन्ध नहिं भूत भविष्य भूत द्रव्य, अवश्य कुछ भी रूपी होय वह जगत् में सभी पुद्गलों रूप परिणाम कर सकता है। भले ही अनन्त परमाणु ऐसे हैं जो अद्यापि स्कन्धरूप नहीं हुए हैं। सतपय तो आगे भी स्कन्ध नहीं हो गे किन्तु सभी पुद्गलों में चाहे कोई भी पुद्गल रूप हो जाने की शक्तिया विद्यमान है जैसे कि जो जीव नित्य निगोद से निकला नहीं है आगे भी नहीं निकलेगा ऐसे अनन्त जीवों में सिद्ध हो जाने की द्रव्य-शक्ति का सद्भाव माना गया है। हम आप सभी संसारी जीव पुद्गलों के बहुत चमत्कार देख चुके हैं। नई देहली में राजप्रासाद जाते समय हमने सौमन पत्थर के खम्भों को खराद पर चढ़ाकर काठ की खुटी समान गोल चाकन का दिये गये देखा है। कलके द्वारा दो मोटा दूर एक मिनट में खम्भा हटा दिया जाता था। फिर लेपन चालन पर वे चढ़ा देते थे। विद्याधर, चक्रवर्ती, देव, इन्द्र इनसे भी बहुत बड़े कार्यों को अतिशीघ्र कर डालते हैं। चेतन के कार्यों में जड़ पदार्थों के कार्य तो अनन्त गुण आवश्यक हैं। वैज्ञानिकों ने पुद्गलों को नचा रक्खा है। मोटरकार, टैंक, बड़े ऐंजिन ... पनडुब्बी, मशीनगन, अणुबम,

मुरगें, यान-विद सक तोपं, निफ्रीसें, रेडियो, वायरलैस, घड़ीयम, वायुयान आदि रूपों म अनेक सातिशय कार्य देखे जा रहे है। ये सब 'निस जन्त रूड पजर' इत्यादि गोम्मटसार अनुसार कुज्ञान हैं हिसामय है। जड़ोंने भी जीवात्मा को परतन्त्र कर अनेक रङ्ग दिखाये हैं। "कर्म-स्थिति जन्तुरनेकभूमि नयत्यमु' सा च" (धनञ्जय) मानव पर्याय में कर्माधीनता को मिटा सकते हो, गुरु शिक्षाओं पर चलो।

अब आप सर्वोत्कृष्ट आत्म-कल्याण के मार्ग म लगिये। देवशास्त्र गुरु सदा कल्याणमय मोक्ष मार्ग का उपदेश देते हैं संसार-वर्द्धक या हिंसामय कर्तव्योंका नहीं।

आप प्रयत्न कर स्वकीय कषायो को न्यून करो। इन्द्रियों को बलात् वश मे रक्खो, तभी लौकिक पारलौकिक सुखों को प्राप्त कर सकोगे। ऐदयुगीन हिंसा-असत्य, चौर्य, व्यभिचार, मूर्च्छा, दम्भ, धोखेबाजी, चालाकी, विश्वासघात, कन्या-स्त्री-वास्तु हरण की पाप भित्ति पर जमाया गया दूराज्य कितने दिन ठहरगा? शीघ्र नष्ट हो जायेगा विचारे भले लोग भी उनके पाप म फंस जायंगे यानी जो पाप आगे काल न उदय आता या पुण्यरूप होकर फल देता उस पापोदय से सज्जनभी उनके साथ कष्ट पावेंगे "कषायभावान् धिक्"।

हा अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, त्याग, तपस्या अपरिग्रह, परोपकार, क्षमा की नींव पर जो सुराज्य है वह चिरस्थायी है। इस राज्यमें कतिपय पापी भी सुख पावेंगे। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव अनुसार पाप का भी पुण्य-रूप सक्रमण हो जाता है।

गृहस्थ पण्डित भी उपदेश दे सकते हैं। मनका स्रोत मर्मज्ञोक्त से है। उद्भट आचार्यों के बनाये हुये समयसार, कषायप्राभृत, तत्वार्थ सूत्र, गोम्मटसार, राजवार्तिक आदि महान् ग्रन्थ हैं ही, इनकी प्रतिपत्ति बहुत बढ़ी हुई है। साथ ही गृहस्थ पण्डितों यानी धनञ्जयकवि, विद्वद्वर्य आशाधरजी टोडरमल जी आदि के बनाये गये द्विसंधान-काव्य, विषापहार स्तोत्र, धर्मामृत, प्रतिष्ठापाठ, मोक्षमार्ग प्रकाश आदि ग्रन्थ भी श्लाघनीय हो रहे हैं पञ्चाध्यायी, चारित्रसार, चर्चा-समाधान, चर्चा शतक, धर्म-प्रश्नोत्तर, मेधावी श्रावकाचार, ज्ञानानन्द श्रावकाचार, दो क्रियाकोश का गृहस्थों ने रचा है। जयपुर के विद्वानों ने गोम्मटसार त्रिलोकसार, सर्वार्थसिद्धि, प्रमेयरत्नमाला आदि की प्रामाणिक भाषा-टीकायें लिखी हैं। मुझ छोटे से गृहस्थ ने भी श्लोकवार्तिक नामक न्यायसिद्धान्त ग्रन्थ की एक लाख तीस हजार श्लोक प्रमाण भाषाटीका लिखी है। श्रीदेव-शास्त्र गुरु के प्रसादसे यह शुभोपयोग का कार्य पन्द्रह वर्षों

म समस्त रखा है। इस निबन्ध-पिण्ड में श्री श्लोक-वार्तिक से भी सहायता ली गई है।

तथा ग्रन्थ में पण्डित बनारसीदास जी भूधरदासजी, द्यानतराय जी भागचन्द्र जी प्रभृति श्रावक-विद्वानों के बनाये हुये पुराण, भाषापाठ, पूजन, पद्य, विनतियों का सग्रह आदरणीय हो रहा है। अविरतसम्यग्दृष्टि व्यवहार-श्रावक श्रेणिकजी का तो एक चरित्र-ग्रन्थ ही शास्त्रगद्दी पर पढ़ा जाता है ऐसे सीता-चरित्र, रविव्रत कथा, सुगन्ध दशमी व्रत कथायेंभी शास्त्र-सभाम वाची जाती हैं। कषाय भाव मन्द होय, विशुद्ध प्रतिभा होय, जिनशासन प्रभावना का उत्कट भाव होय तो सस्कृत, प्राकृत, देशभाषाके ग्रन्थो को कोईभी सूत्र या टीका स्तुति आदि रूपसे लिख सकता है। ऐसे कार्य मे लौकिक आराम और तन धन की चिन्ताय छोडनी पडती हैं।

महापण्डित गोपालदास जी, त्यागी ज्ञान जी स्वामी, मुनि कुन्थुसागर जी, उदासीन दुलीचन्द्र जी आदि की लेखपारणि जैन-जनता व स्वाध्याय म आ रही है सबका साक्षात् परम्परा सम्बन्ध श्री महावीर भगवान् से है जैसे कि बिजलीकी छोटीसी बत्ती कहीं चमक रही होय उसका सम्बन्ध बड़े बिजली घर (पावर हाउस) से है भले ही मध्यमे कई लपट, भूषावेशा पहिन लिये जाय तद्वत् उक्त

प्रमेयों का सम्बन्ध वीरोद्भव द्वादशाङ्ग वाणी से चुपट रहा है। अप्रामाणिक वाक्यावलि की चर्चा पृथक् है सर्वत्र आभास पाये जाते हैं।

आज भी अनेक गृहस्थ पण्डित उपदेश देते हैं सभामें कतिपय मुनि, ऐलक, क्षुल्लक, व्रती, त्यागी उदासीन श्रावक समझदार श्रोता उपयोग लगाकर सविनय जिन-वाणी को सुनते हैं। वाहर वेष के विना भी अनेक आत्माओं मे पवित्रत्व घुस रहा है जैसे कि सातवें नरक में आठ अन्त-र्मुहूर्तकम तेतीस सागरतक सम्यग्दर्शन चमकता रह सकता है तथा द्रव्यलिङ्गी या नवम ग्रैवेयक मे वहिर्वेषी के मिथ्या-त्वोदय विद्यमान है। "भरत नृप घर ही में वैरागी" अन्य भी गृहस्थ विद्वानों की अनेक अमर कृतिया हैं तीर्थंकर-जन्म मुनिदान, मन्दिर चैत्यालय वनवाना, उछाह प्रतिष्ठा कराना, संघ निकालना, विद्यालय चलाना आदि कार्यों को गृहस्थ ही कर सकता है। पांचवें से छटे सातवें गुणस्थान का मात्र सवाया ड्योढ़ा अन्तर है। सम्यक्त्वसे गुणाकार लगाना। नीचे तो शून्य है।

भ्राताजी! लेख बढ़ गया है। अन्त में यही उप-संहार करना है कि लौकिक सुखकी कामनाओं को छोड़कर आत्मीय सुखों की प्राप्ति के लिये यत्न करो। लौकिक सुख दुःख तो दैवसाध्य हैं आप लोग विपरीत

कारणों को मिलाते हैं। भाग्य से होने वाले पुत्र-प्राप्ति निरोगता, धन-सञ्चय आदि कार्यों में तो व्यर्थ पुरुषार्थ कर रहे हैं। और पुरुषार्थ से किये जाने वाले जिन-पूजन तीर्थयात्रा, तपश्चरण, ध्यान करना आदि में दैव का सहारा पकड़ते हो, कि भाई क्या करें ? धर्म करना हमारे भाग्य में ही नहीं बदा है। आप इन इन्हीं प्रमाद-पूर्ण प्रवृत्तियों से आज तक दुःख भोग रहे हैं। और यदि नहीं सम्हले तो यही मोह, अज्ञान, राग, द्वेष, द्रव्य-कर्म भाव-कर्म की परम्परा बढ़ती चली जावेगी, पुद्गल में बड़ी शक्ति है इसी ने जीवों को अनादि से पराधीन दुःखित कर रक्खा है एक बड़े पहलवानकी सरसों बरोबर गिरसे कुश्ती कराइये। अणुनम को ५० मील लम्बे चौड़ क्षेत्र के सभी बलाढ्य पदार्थों से लड़ा दीजिये देख कौन जीतता है ? बस एक धर्माचरण या तपस्या से ही पुद्गल जीता जासकता है यही सर्वांग सुरक्षित मोक्ष का उपाय है।

जहां तक होय शीघ्र ही मोह निद्रा को त्यागो, और कषायमय प्रकरणों में संवेग वैराग्य भावते हुये आत्म-वस्तु का स्वभाव हो रहा तथा क्षमा आदि स्वरूप-परिणमन कर रहा, दयापूर्ण इस रत्नत्रयधर्म को पालन कर कर्मों का सम्वर निर्जरा करते हुये चरम-फल निःश्रेयस को प्राप्त करो। जो कि धर्म-सेवन का प्रधान फल है। इस लेखके

आगमोक्त प्रमेय का चिन्तन करना भी शुभध्यान है अतः मवर हेतु है स्वाध्याय नामका तप है अत: निर्जरा हेतु भी है जैन-सिद्धान्तो का परिज्ञान तो सर्वोत्कृष्ट लक्ष्य है ही ।

श्रों नम श्रीशान्तिनाथाय, नमोस्तु वर्धमानाय ।

क्षुण्णीकृतकर्माष्टकजाष्टगुणा अष्टमीधराधिष्ठा
सिद्धा क्षमादिरूपा सुखिनो रत्नत्रय ददतु धर्मम् ।
नानानानात्मनीन नयनयन-युत तत्र दुर्नीतिमान,
तत्र-श्रद्धानशुद्धचाध्युषित-तनुदृढद्बोध-धामाधिरूढम् ।
चञ्चच्चारित्र चक्र प्रचुर परिचर !चण्ड कर्मारिसेना,
सातु साक्षात्समर्थ घटयतु सुधिया सिद्धिसाम्राज्यलक्ष्मीम् ।
(श्लोकत्रातिक हिन्दीभाषा भाष्य)

(धर्मश्च फलञ्च सिद्धान्तश्च) इस निबन्ध मे जैनधर्म पालना और उसका फल तथा जैन-सिद्धान्त का प्रतिपादन किया गया है ।

इति चावली निवासि न्यायाचार्योपाहित माणिकचन्द्र सम्पा-दित "धर्म-फल-सिद्धान्ता" सम्पूर्णम् ॥

॥ शान्ति शान्ति शान्ति ॥



श्रीमन्तोर्हन्त आप्ताखिदशपतिनुता वीक्ष्य निर्दोषवृत्ताद्
यस्माद्वस्तस्थमुक्ताफलमिवयुगपद् द्रव्य पर्यायसार्थान् ।
हानोपादत्युपेक्षा--फलमभिलपतो मुक्तिमार्गं गशासु-
स्तत्वज्ञानेप्सुभव्यान् स किल विजयते केवलज्ञानभानुः ॥

प्रमाण--नय-सत्तर्कैर्न्यक्कृत्यैकान्तिना गतिम् ।
हसीस्याद्वादगी स्वच्छा पुनीतान्ममम नसम् ॥

द्रव्येशानाद्यनन्तो निखिलमतिनिदानोऽङ्गबाह्यागमेदो,
निर्दोषो दु यतप्राभुगदनपटु-निष्कलङ्काशिपेद्ध ।
विद्यानन्दाकलङ्कोक्त्यमृतकिरणभृत्प्रातिभार्य कलाढ्यो
भानाद्येशान्तवाणी तिमिरततिभिद द्योतता वै श्रुतेन्दु ॥

ध्याने हित्वार्त्तरौद्रे समितिमुपगता दैशिक सवर ये,
ध्यायन्तो धर्म्यशुक्ले परिपद्जयतो भावनेद्धाष्टशुद्धी ।
कुर्वाणा स्वात्मयत्नादगणितगुणिता निर्जरा कर्मणात,
निर्ग्रन्था सयमार्थै स्वपरहितरता पान्तु माज्याखिगुप्ता ।

वीरोमास्वाम्युपज्ञाघ्यगमुनिपसमन्तादिभद्राकलङ्क-
विद्यानन्दोक्तिभिर्द्राक् छलवितथवचोनिग्रहस्थानपरीक्ष्य
तत्वार्थज्ञप्तिभेद जितविजितदशामाकलय्याप्तशास्त्र-
रचन्द्रार्काव्यभिज्ञोनुभवतु शिवदा न्यायसाम्राज्यलक्ष्मीं॥

(श्लोक वार्तिक हिन्दी भाष्य)



आभार प्रदर्शन

असंख्यवन्दारुसुरेंद्रवृन्द- निमेषशून्याक्षिसहस्रलोक्यम् ।
निरष्टकर्माष्टकशैलवज्रं नमामि वीरं त्रिजगच्छरण्यम् ॥

मुमुक्षु को निश्चयनय से आत्मा ही आत्मा का उपकारी है। तभी तो उसकी निज सपर्या का फल स्व को ही मिलता है। स्वपुरुषार्थ-जन्य विशुद्धि परिणतियों का ही अनन्त-काल तक आत्मा आभारी रहता है। (समयसार)

हां व्यवहार मे नारक, तिर्यग्, मनुष्य और देवोंके सच्चे उपकारी पञ्च परमेष्ठी हैं। असंख्य तीर्थङ्करों के जन्म कल्याणक अवसर पर असंख्यात वर्षायुष्क नारकियों को असंख्यात बार दो दो मिनट के लिये क्षेम हो जाता है। सम्यग्दृष्टि नारकी तो पञ्चपरमेष्ठियों का बुद्धि, इच्छा, प्रयत्न पूर्वक श्रद्धान करते हैं बड़े हर्षातिरेक से कहना पड़ता है कि एक बटे सोलह राजू चौड़े, एक बटे चार राजू लम्बे यों असंख्याते बड़े योजनों लम्बे चौड़े तिरछे गोल स्वयम्भूरमण द्वीपोत्तरार्ध मे पल्य के असंख्यातवें भाग परिमित असंख्याते गाय, भैंस, घोड़े, सिंह आदि तिर्यंच देशव्रती हैं वे स्वर्गों नरकों या यहासे जाते हैं अनेक मिथ्यादृष्टि वहा पहुचते हैं वहा ही सम्यग्दर्शन और देशव्रत ले लेते हैं, बहिरङ्ग निमित्त वहा नहीं हैं। ये सब परमेष्ठियों की बड़ी श्रद्धा करते हैं "धन्यास्ते"।

"श्रेयोमार्गस्य संसिद्धि प्रसादात्परमेष्ठिनः" (विद्यानद)

देव और मनुष्य तो परमेष्ठियोंकी आराधना करते प्रसिद्ध ही हैं तथा ऐहिक गुरु-परम्परा का भी उपकृत यह मानव है।

"उच्चैर्गोत्रं प्रणते" (स्वामी समन्तभद्र)

पर ग्रंथ निर्ग्रन्थ-चैत्य, चैत्यालय, मातृ पितृ परम्परा, विद्यालय, राजा, वैद्य, देशनेता आदि उपकारी गण भी "गुणिषु प्रमोदं" की भावना भावने वालों को स्मरणीय हैं।

मङ्गलाष्टक स्तोत्र, पूजन, तत्त्वार्थसूत्र में आकाश, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, मेघ, नदी, अन्न, प्राण, शरीर, मन वचन धर्मद्रव्य काल आदि को भी उपकारी मान्य किया है। कृतज्ञको इन सबका लक्ष्य रखना चाहिये।

भूत भविष्य उपकारकों का भी जो कृतज्ञ है वह तो पुरुषोत्तम ही है। मङ्गलाचरण या जिनपूजन में उपकारक स्मरण भी प्रयोजक है। वेदी में विराजमान, तेरहवें गुणस्थानवर्ती अरहंत की हम, आप पूजा करते हैं। यहां भी उपकारक के तीन कल्याणक भूत हैं एक कल्याण भविष्य है। तीन काल के तीर्थङ्करोंको चौबीसीके पूजन समान भूत भविष्य वर्तमान उपकारकों का अधमर्ण हो रहा कृतज्ञ तो महान् आत्मा है वैसे अधमर्ण (धन का कर्जदार) दीक्षा नहीं ले सकता है 'अधमर्णः प्रव्रज्या नार्हति" किन्तु यह उपकारकों का ऋणिकर्ता अधमर्ण कृतज्ञ तो दीक्षा लेना क्या दूसरोंको दीक्षा शिक्षा दे भी सकता है। चन्द्रप्रभ काव्य में कृतज्ञता को सर्वोत्कृष्ट गुण कहा है।

सगरचक्रवर्ती ने असंख्यात वर्षों पश्चात् जन्म लेने वाले

श्री नेमीश्वर भगवान् के निर्वाण क्षेत्र होने वाले गिरनार पर्वत की प्रथम ही तीर्थ वन्दना की थी, श्रास्ताम्।

सहारनपुर में लाला जम्बूप्रसाद जी प्रद्युम्नकुमार जी का घराना यावज्जैनों में प्रख्यात है ये तीनों सम्प्रदायों के जैनों में सर्वोत्कृष्ट जमींदार हैं। ८० ग्रामों के अधिपति हैं।

मैं बाईस वर्ष से श्रीमान् लाला प्रद्युम्नकुमार जी रईस के के यहां आजीविकित निवास करता हूं। लाला जी ने अपने प्रासाद में उच्च निवासस्थान दे रक्खा है। लाला जी बड़े आदर सन्मान के साथ मुझे बड़ा विद्वान् मानकर सदा सत्कृत करते हैं। जैन-जगत् प्रसिद्ध, धर्मप्राण, तीर्थभक्त-शिरोमणि, स्वर्गीय लाला जम्बूप्रसाद जी भरतवत्भोग-विरक्त थे। उन्हीं मान्य पिता जी के अनुरूप अनेक गुण लाला प्रद्युम्नकुमार जी में हैं। बड़े दयालु उदार तथा विद्वदनुरागी हैं। स्वभाव मृदु है, मिलन-प्रकृति हैं। पाच सौ रुपये मासिक दान करते हैं। अन्य भी हजारों रुपयों का दान अपने हाथों से कर चुके हैं। जिनपूजन, शुभाचरण बढ़े हुये हैं। गृहस्थ विद्वान् को आदर विनय करने वाले प्रभु का प्रसङ्ग बड़े भाग्य से मिलता है। तभी विद्वान् का क्षयोपशम, नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा, निराकुलता, निश्चिन्तता, स्वोन्नति, आत्म-गौरव आदि रक्षित रह पाते हैं। रोग आदि के प्रकरणों पर हमारे कष्टों के निवारणार्थ लक्ष्य रखते हैं। आचार-विचार बड़ा अच्छा है। बाईसवर्ष से आज तक आजीविका प्रदान कर रहे हैं, भविष्यके लिये भी उच्च-भाव हैं।

इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सौभाग्यवती बहू जी पद्मावाई की प्रकृति कोमल भद्र वत्सला है। धर्मकार्योंमें दत्तावधान हैं। मान तो छू भी नहीं गया है। मेरी अधिक मान्यता करती हैं। पति के अनुरूप ही गुण हैं, दम्पती में गाढ़ स्नेह है।

ऐसे ही इनके पुत्र सौम्याकृति कुल-प्रदीप सज्जन, बाबू चिरञ्जीव देवकुमार जी हैं। सर्वार्थसिद्धि तक धर्मशास्त्र पढे हुये हैं। अंग्रेजी हिन्दी की भी अच्छी योग्यता है। अवस्था अभी बीस वर्ष की है। भविष्यमें अच्छे होनहार हैं। ढाई वर्ष प्रथम विवाह हो चुका है। छोटी बहू कानपुर के रायसाहिब लाला रूपचन्द्र जी की लड़की है। लज्जा, अल्पभाषण, कोमल प्रकृति बड़ों की सेवा, शिक्षा, सदाचार, अतिथि-सत्कार गुण विद्यमान हैं।

लाला प्रभुकुमार जी के पितृव्य रायबहादुर लाला हुलासराय जी रईस प्रसिद्ध धार्मिक हैं, जिन पूजन का विशेष अनुराग है जैन पण्डितोंका आदर, पुरस्कार, विनय करने में सदा कटिबद्ध रहते हैं। सैकड़ों दुःखियों का उपकार किया है, सदाचारी, भव्य-भद्रपरिणामी गुप्तदानी हैं। ये "गगन गगनाकार" के समान अनन्वय हैं। अजातशत्रु हैं। यह वस्तुस्थिति है, चाटुकार नहीं। मैं इस परिवार के समीचीन व्यवहारों से नितान्त आभारी हूं।

धर्म-प्राण, उदासीन श्रावक, दयासिन्धु जयचन्द जी भक्त तो त्यागियों से भी बढ़कर हैं। दसों वर्षों से दही, घी, दूध,

मीठा, तेल, हरिया सबका त्याग है। मात्र मक्का या चना अपने हाथसे भूनकर चाब लेते हैं आठ वर्षोंसे दाल, भात, रोटी पूड़ी पकवान, शाक नहीं खाया। सदा बच्चा, युवाओं, वृद्धों को धर्मपालन में निमग्न करते रहते हैं। परोपकारी सज्जन, दया-मूर्ति हैं। इनके उद्योग से यहा एक शुद्ध जैनऔषधालय चार वर्ष से चल रहा है। प्रतिदिन नव्वै रोगियों को औषधिया अ-मूल्य बटती हैं। यहा इनके तीनसौ जैनपुत्र चेले हैं। जो कि यहा या बाहर जाकर अथवा मेलों में धर्म्यक्रियाओं का प्रचार करते हैं इनने सैकड़ों बन्धुओंको आजीविका से लगाया है, हजारों कुत्तों, लाखों चूहों, पशु पक्षियों, करोड़ा अरबो असख्यों चीटियाँ घई, घुन, लटों आदिको मौतसे बचाया है। विद्वान् की तात्त्विक चर्चा को बड़ी श्रद्धा से समझते हैं। ये शास्त्रज्ञ हैं।

मेरे कुटुम्बीजनों ने मुझे निराकुल, निश्चिन्त, सर्वयावृत्त्य, सामोद रक्खा है वे मेरे अनुकूल प्रवर्त रहे हैं। गृहस्थ की बुद्धि-स्थिरता, धर्मपालन, ग्रन्थलेखन, उचितशुद्धाहार, आरोग्य में ये सभी सातिशय बहिरङ्ग कारण हैं। अन्य भी सद्भाव रखते हैं। परस्परोपग्रहो जीवानाम्। मैं इन सब का आभारी हू।

स्याद्वाददीधितिसहस्रनिरस्तमिथ्या-
वादत्रिषष्ठि—सहितत्रिशतीतमिस्र।
निर्दोषवृत्तमहितो जिनपस्य जीयाद्
विश्वज्ञबोध-तरणिर्जगदेकमित्रम्॥

आभारभारभृत—माणिकचन्द्र कौन्देय।

सम्मति

(१)

प्रस्तुत पुस्तक के निर्माता वे विद्वान् हैं जिनका दिगम्बर-जैन समाज में सर्वोच्च स्थान है। श्रीमान् पण्डित वंशीधर जी इन्दौर, प० मक्खनलाल जी शास्त्री मुरैना, पं० देवकीनन्दन जी कारंजा, प० राजेन्द्रकुमार जी मथुरा, प० पन्नालाल जी सोनी, प० कैलाशचन्द्र जी बनारस, प० जगमोहनलाल जी और मुझ जैसे जो विद्वान् मुरैना विद्यालय से तयार हुये हैं प्राय सभी ने आप से न्यायदीपिका से श्लोकवार्तिकान्त न्यायशास्त्रों का अध्ययन किया है। जम्बू-विद्यालय सहारनपुर में भी आपने बीसों छात्रों को जैनन्याय तथा गोम्मटसार, राजवार्तिक, प्रवचनसार, पञ्चाध्यायी त्रिलोकसार आदि सिद्धातग्रन्थ पढ़ाये हैं। आप न्याय, व्याकरण, साहित्य, सिद्धात आदि विषयों के तथा षड्-दर्शन के अवगाही विद्वान् हैं। न्याय, सिद्धात नीति आदि विषयों के लगभग ८० हजार श्लोक आपको कण्ठस्थ हैं। आपने न्याय तथा सिद्धात के प्रमुख ग्रन्थ श्लोकवार्तिक का एक लाख तीस हजार श्लोक प्रमाण विशाल हिन्दी-भाष्य किया है। पाठक महानुभाव श्रीमान् पूज्य पण्डित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य की विद्वत्ता इन थोड़े शब्दों से

आक सक्ते हैं। आप अब अध्यापन कार्य छोड़कर धार्मिक ग्रन्थ-स्वाध्याय, धर्माचरण मे समय यापन करते हैं। अवस्था ६१ वर्ष है।

आपने इस पुस्तक में 'धम तथा धर्म-साधन का फल और जैन तात्त्विक सिद्धांत' इन विषयों का अन्तस्तत्व स्पष्ट कर दिया है। 'धर्मसाधक या ध्याता के लिये उपसर्ग परीषह-विजय श्रेयस्कर है अथवा किसी देव आदि द्वारा उपसर्ग-निवारण हित-कर है ? इस विषयका बहुत सरल सुन्दर विवेचन किया है। आपने अपनी तार्किक तुला से तुलना करके 'कथित देवातिशय (देव-कृत सहायता से सङ्कट निवारण) तथा धीरता वीरता से घोर कष्ट सहन कर ह्रेनोपनीत पदार्थ,यथार्थ है' ,इन बातों का ठीक वजन कर के पाठकों के सन्मुख रख दिया है।

इसके सिवाय 'एकेन्द्रिय आदि असैनी जीवों के दर्शन-मोहनीय आदि अष्ट-कर्मबन्ध किस प्रकार होता है आदि रहस्य-पूर्ण बातों का विवेचन प्रौढ प्राञ्जल भाषा में किया है। गत २५ ३० वर्ष से किसी भी विद्वान द्वारा लिखी गई ऐसी पुस्तक देखने में नहीं आई। अत यह पुस्तक अपने रूप मे अनूठी पुस्तक है।

अजितकुमार जैन ,शास्त्री,

अकलङ्क-प्रेस सदर

(२)

जैनों के अल्प-संख्यक होने के कारण उन अन्य

जातियों के ईश्वर-कर्तृत्ववाद का प्रभाव पड़ रहा है और उनकी असावधानी एवं शिथिलता के कारण जैनों में एक प्रकार का मिथ्यात्व घुस गया है। श्रीमान् सिद्धांत महोदधि, तर्करत्न, विद्वद्वर्य पण्डित माणिकचन्द्र जी न्यायाचार्य ने इस पुस्तक में इस विषय पर बड़ा सुन्दर तथा युक्तियुक्त विवेचन किया है। मुझको पूर्ण आशा है कि इस पुस्तक स्वाध्याय से जैनों को मिथ्यात्व त्यागने में अत्यन्त सहायता प्राप्त होगी। इसके अतिरिक्त प० जी महोदय ने इस पुस्तक में अपने चिर-अभ्यस्त ज्ञान से जिनागम का मथन कर बहुत सी रहस्यपूर्ण बातें उद्धृत की हैं।

इस पुस्तक के स्वाध्याय से मुझको बहुत लाभ तथा ज्ञान प्राप्त हुआ है। प० जी महोदयने स्थान २ पर प्रमाण व युक्तियां भी दी हैं। ध्यान और ध्यातव्य विषयों का भी उत्तम विवेचन किया है। जैन-समाज आपका अत्यन्त कृतज्ञ है कि आपने केवल परोपकार बुद्धि से अपना अमूल्य समय तथा परिश्रम इस पुस्तक के लिखने में व्यय किया है, और विशाल-हृदय से समाज के सामने सैंकड़ों महान् ग्रन्थों का स्वाध्याय व मनन के पश्चात् निकले हुये रहस्यपूर्ण सिद्धांत-तत्त्व रख दिये हैं। मैं आपको इसके लिये हार्दिक धन्यवाद देता हू।

रतनचन्द्र जैन, मुख्तार

नेमिचन्द्र जैन बी० कॉम, (वकील)

सहारनपुर ३०-११-४७

परिशिष्ट निवेदन

नानावस्तुस्वभावभ्रमकलितवपु स्यात्स्वतत्वाप्यनीचि,
रत्नाना अप्यगाधे गणधरसुनय: स्नान्ति यद्बोघतोये।
सिद्धार्थापत्यगीरोद्भव—सकल—जगतारिसामर्थ्यजुष्ट—
त्राह्मी गङ्गा पुनीताद्दुरितनिरसनी चिद्धता भव्यहृद्यान् ॥
(पिता जी)

मैं पूज्य पिता जी पं० माणिकचन्द्र जी का अग्रज (बड़ा) पुत्र हूं। मेरा लघु भ्राता चिरञ्जीव प्रेमचन्द्र है, भद्र स्वभाव है। मैंने पिता जी से शास्त्रीय और न्यायतीर्थ परीक्षा तक के सिद्धान्त न्याय ग्रन्थ पढ़े हैं। पिता जी ने परिश्रम कर इस पुस्तक को लिखा है। अनेक प्रतिपादन तो ऐसे हैं जो मैं भी बुद्धि पर जोर लगाकर भी नहीं समझ पाता हूं। आप भी मन, वचन, काय से प्रयत्न कर दो तीन बार स्वाध्याय करें। सभी लोग ज्ञातव्य हैं। लोकत्रय में सब से बड़े ज्ञानदानी तो श्री अरहन्तदेव हैं। द्वितीय श्रीगौतम गणधर, भद्रबाहु, धरसेन, भूतबलि कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलङ्कदेव, नेमिचन्द्र, विद्यानन्द आदि प्रकाण्ड आचार्य महोदय हैं। किन्तु पूज्य पिता जी ने भी उन्हीं से प्राप्त कर यह

समयोचित मन्थ लिख कर विशेष आदान किया है। आपका उत्कृष्ट उद्देश्य तो प्रयत्न-पूर्वक सब कर्मों का मोक्ष करना है। एकेन्द्रिय जीव भी व्यक्त अव्यक्त पुरुषार्थ करके वीर्यान्तराय कर्म का क्षयोपशम कर और सद्भावी ज्ञानावरण का यत्नपूर्वक क्षयोपशम करता हुआ स्पर्शनेन्द्रिय-जन्य ज्ञान उपजा लेता है। संज्ञी नर तो प्रत्येक ज्ञान को उपजाने में अधिक वीर्ययुक्त होकर श्रम करते हैं। लेख वचन चेष्टायें उस प्रयत्न को करने में अवलम्ब हैं। इन निमित्तों से पण्डिता की आत्मा में स्वपुरुषार्थ कर के उच्च श्रुतज्ञान उपजा लिया जाता है इसी लिये प्रयत्नपूर्वक किया गया स्वाध्याय सभी श्रावक या मुनियों का आवश्यक कर्तव्य माना है किसी किसी निविड पंक्ति को लगाने में जाड़ों में पसीना आ जाता है मस्तिष्क घूर्णन हो जाता है। इस सम्फलनके स्वाध्याय से थोड़ा भी आवरण हटेगा वह एक देश निर्जरा है।

बन्धने, छूटने के विभिन्न ढङ्ग हैं। नाना पदार्थों को अनेक प्रकारके निमित्तों से बांध दिया जाता है। जैसे पत्थरको चपड़ा से, काठ को सरेश से, आत्मा को कषायों से, सोने चांदी को टांके से, कागज को गोंद से, दम्पती को स्नेह से, कपड़े को डोरा से, ईंट को चूना से, ज्वर को अपथ्य से, हड्डी को औषधि-रस से, मित्रों को समप्रकृतित्व से, माता पुत्र को वात्सल्य से, कुटुम्बियोंको निश्छद्म व्यवहार से, धार्मिकों को सदाचार से जोड़ दिया जाता है। बद्धत आत्मा और कर्मोंको मिथ्यात्व, असंयम और प्रमादों से बन्धन बद्ध कर दिया जाता है। इसी प्रकार

पदार्थों के विभाग करने के भी साधन अलग हैं। सोने के मल को अग्नि या तेजाब से हटा दिया जाता है। पानी का मल फिटकरी से, ऊनी वस्त्र का मल पैट्रोल से, डामरका मल मिट्टी के तेल से दूर हो जाता है। आत्मा और स्थूल शरीर के सम्बन्ध को विष, शस्त्राघात, रक्तक्षय, तीव्रसंक्लेश से हटा दिया जाता है। पेट मल को जमालगोटा से, सखिया मल को गोदुग्ध से, लोह मल को त्रिफला से, ज्वर को ज्वरांकुश से पृथक् कर दिया जाता है। तद्वत् कर्म और आत्मा को रत्नत्रय, संयम, तपस्या, ध्यान, करके विभक्त कर देते हैं। प्रामाणिक पुस्तकाध्ययन से अज्ञान दूर हो जाता है।

इस निकृष्ट काल में जैनों कर के अन्य धार्मिक आचरणों के समान तात्त्विक पुस्तकें लिखना भी दुस्साध्य होगया है। पुन कोई वान्यता, ईर्ष्या, कुबोध, शङ्कायें उठाना, खण्डन, आक्षेप, निन्दा, कदारोप आदि छुरे छुरियों की पैनी धार के मध्य बैठ कर लिखे भी, तो पचगुनी लिखाई, छपाइ, भेजाई के कार्यों में सैकड़ों हजारों रुपये कौन धनिक लगावे। दो चार विद्वानों ने तात्त्विक पुस्तकें लिखीं किन्तु वे अचिन्तित विघ्नों के आजाने से हतोत्साह हो गये। इस पैसेके युगमें धर्मसेवन मे भी धन की आवश्यकता है। निस्पृह मुनि विचारे कितने हैं? सर्वत्र द्रविणाकांक्षा पाई जाती है। मात्र शिखर जी की यात्रा मे ही एक आदमी को कम से कम पचास रुपये चाहिए। प्रवास की कठिनाइयों का झेलना सूची-शय्या पर बैठना है। पैदल भी जावे तो दो महीने तक

रिक्त पेट को भोजन तो चाहिये ही। त्यागियों का आदर कैसा होता है? यह उनको स्वयं-वेद्य है। यों आज कल जैन समाज में योग्य ग्रन्थों का प्रकाशन मन्द पड़ गया है। आर्य समाजियों, वैष्णवों, श्वेताम्बरों में अनेक ग्रन्थ-प्रकाशन संस्थायें हैं। दिग-म्बरों में नहीं सदृश हैं, छोटी मोटी हैं भी व लक्ष्मीपतियों के सर्वाधिकार में हैं। ठोस कृतियों को वे प्रकाशित नहीं करते हैं। अच्छे लेखकों को प्रोत्साहन भी नहीं देते हैं। बस स्वामियों को जो रुचेगा सो होगा। पाण्डित्य की प्रमुखता नहीं है।

पुस्तकें छपाकर वेचने वाली संस्थाओं के लक्ष्य ही न्यारे हैं। दिगम्बर जैनों की परिस्थितियां ही विलक्षण हैं चार सौ वर्ष के प्राचीन विद्वान् ने ठीक कहा है कि—

बोद्धारो मत्सरग्रस्ता, प्रभवः स्मयदूषिता. ।
अबोधोपहताश्चान्ये, जीर्णं मन्ये सुभाषितम् ॥

सभी धार्मिक अनुष्ठानों में तथा विशेषत तात्त्विक पुस्तकें या प्रौढ़-ग्रन्थों की भाषा टीका लिखने में जिनेन्द्र-भक्ति, जैनग्रन्थों का पुरुषार्थ से अन्त प्रविष्ट अध्ययन, शुभ-विचार, तीर्थ-यात्रा, प्रतिमा, शुद्ध भोजन, शास्त्रान्तरज्ञान ब्रह्मचर्य, तर्कणाशक्ति आदि गुण कारण हैं तथा दूसरोंसे वैय्यावृत्त्य या खुशामद कराते रहना अकर्मण्य चुप बैठना, पुनापा अल्पसार पुस्तकें या अखबार पढ़ना विनोद-क्रीड़ा, मानसिक अशुद्धि भावहिंसा, प्रवेशी स्वाध्याय न करना, कोरा अभिमान, आलस्य, खाद्य-पेय आदि के बाह्य सुखों

का स्वाद, कुटुम्बि-स्नेह, व्यर्थ मोह, धनार्जन परत्व आदि दोष प्रति बन्धक, हैं।

यों कतिपय परिस्थितियों को देख कर किन्हीं त्यागी या विद्वानों ने "मौन सर्वार्थसाधनम्" का आश्रय ले लिया है। इस कथन से बोधित या प्रेरित हो कर कोई विद्वान् या त्यागी नवीन प्रतिपादन पद्धति से प्रौढ तात्त्विक पुस्तकें लिखेंगे तो वे इस युगमे जैनाजैन जनता का महान् उपकार करेंगे। राजवार्तिक गोम्मट-सार श्लोकवार्तिक आदि खानोंमे असख्य प्रमेय-रत्न भर रहे हैं। समुद्रावगाहन कर उनको युक्तियों और दृष्टान्ता द्वारा भव्य देश-भाषा मे प्रकट दिखा देने की आवश्यकता है। प्रमाणों, नयो, षड्-द्रव्यों, लेश्याओं, धर्माभू, भोजन शुद्धि, एकेन्द्रियजीवसिद्धि, सज्ज्ञान, सूयभ्रमण, सप्तभङ्गी, सम्यक्त्व, ध्यान, शरीररचना आदि विषयों पर कतिपय तज्ज्ञ सिद्धान्त पुस्तकें लिखे जाने की प्रचुर कांक्षायें हैं। तभी विशाल जिनेन्द्रशासन की वज्रलेप प्रभावना हो सकेगी। हित, गम्भीर, महान्, जैन साहित्य के सन्मुख आधुनिक उपलब्ध सैकड़ो गुना अल्पसार साहित्य छोटा, फीका जचेगा।

सहारनपुर में सब से छोटा खाने योग्य खीरा छह माशे का होता है। और मालवे मे पाच सेर पक्के का खीरा उपजता है। यहा बहुत पक्का आम एक तोले का लगता है। और बड़ा आम सौ तोले तक का होता है। मध्यम अवगाहनाओं के धारी आम्रफल भी यहा पाये जाते हैं। हमारे घर में एक छोटी कँसैड़ी

ऐसी है जिसमे केवल तीन तोला दाल पकती है। बड़े भगोने मै पाच सेर दाल पकती है। जाला जी,के यहा एक पारछा देगा है जिस मे पाच मन साग छुक जाता है। अजमेर की दरगाह म एक डेग ऐसी है जिस में पाच सौ मन खीर रधती हैं। ऐसे ही छह मासे से लेकर सौ मन तक की घड़िया देखी गई हैं। बहुत मनुष्यों, पुद्गलों, देवो और देवा के कार्यों मे तथा विद्वल्लेखों मे भी तारतम्य है पाग, भाग, वाणी, सूरत, विवेक प्रकृति, हस्ताक्षरों के समान बड़े विद्वार् और छोटे पण्डित के लेखा मे बड़ा अन्तर है।

विद्वान् सूर्य समान स्वपरप्रकाशक है। सूर्य मूलमे ठंडा है किरणें उष्ण हैं। सूर्य से कोई रत्ती भर किरण यहा नही आती है यों सूक्ष्मरीत्या असंख्याते पृथ्वी-कायिक जीव वहा जन्म, मरण कर रहे हैं और अनन्ते पुद्गल स्कन्ध सूर्य मे से आते जाते रहते हैं उनका प्रकाश या किरणों से कोई सम्बन्ध नहीं है सूर्य और आलोकित पदार्थों के मध्य क्षेत्र में अनन्त बादर पुद्गल भरा हुआ है। यह सूर्य निमित्त से उष्ण हो जाता है जैसे अग्नि के निमित्त से जल गर्म हो जाता है। टोकनी के जल में चूल्हे से रत्तीभर भी आग नहीं आती है अग्नि स्पर्श से पैंदा तप्त हो जाता है पैंदे से छुआ पानी भी गर्म हो जाता है। नैयायिक गर्म पानी मे अग्नि मिल जाना स्वीकार करते हैं सो ठीक नहीं है। दीपक प्रकाश से भी मध्यवर्ती पुद्गल प्रकाशित हो जाता है। जैनसिद्धात यों है कि पौद्गलिक काला अन्धेरा शुक्ल-प्रकाशमय परिणम जाता

है। और दीपक में से कुछ आता जाता नहीं। शीतल सूर्य के निमित्त से सौ योजन ऊपर, पचास हजार तिरछा और अठारहसौ योजन नीचे भरे हुये बादर स्कन्ध प्रतापित, प्रकाशित हो जाते हैं। हरा कपड़ा और लाल कपड़ा दोनों मूल मे ठण्डे हैं। किन्तु हरा वस्त्र दूखती आखों पर रखने से लाभ होता है और लाल कपड़े की कान्ति से हानि।

कस्तूरी, सौंठ, पीपल, चित्रक, पीपलामूल भी परिपाक मे उष्ण हैं मूल मे नहीं। मकरध्वज, वृहच्चद्रोदय शीशी मे ठण्डे रक्खे हैं आसन्न-मरण नर की शीत व्यथा मे एक चावल बरोबर देते ही सम्पूर्ण शरीर गर्मागर्म हो जाता है। हां अग्नि तो मूल और प्रभा दोनों में उष्ण है। चन्द्रमा दोनों मे ठण्डा है। बस इन्हीं पदार्थों के समान प्रतिपादक के ज्ञान की किरणें प्रतिपाद्य की आत्मा को ज्ञानप्रकाशित करती हैं। आता जाता कुछ भी नही है। मात्र छोटा सा पृथग्भावरूप से निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है। क्रमिक स्वाध्याय से अधिक ज्ञान लाभ होना है चारित्र पालन भी क्रमबद्ध होय।

हम आप, अष्टमी चौदस या प्रतिदिन जिन-पूजन में सचित अचित्त रली मिली सामग्री चढ़ाते हैं, पर्व के दिन हरित वनस्पति नहीं खाते। सचित्त जल या नमक की डेली पी खा लेते हैं। सचित्त जल से अभिषेक करते हैं। चढ़ाने के पानी में एक लौंग डाल देने से क्या हो जाता है?। एक लोटा जल मे एक तोला लवङ्गचूर्ण घोलो तब रसा तर होकर अचित्त बने। धूप

को सचित्त अग्निमें डालते हैं। कोई कोई घृतदीपक या कर्पूर-दीपक भी चढ़ाते हैं, दक्षिण देशमें इससे भी अधिक सचित्त द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। यों हम पाक्षिक के कोई पांचवीं प्रतिमाकी क्रिया हो रही है। कोई पहिली प्रतिमा की भी नहीं। हां अभ्यास रूप जो हो जाय अच्छा ही है। मग होता तो अच्छा था। आप अष्टमी, चौदस, अष्टाह्निका, दशलक्षण, महीने की आदि तिथि, वर्ष का आद्य-दिवस, स्वपन्मतिथि आदि तिथियों में अधिक धर्म सेवन करो। श्रावक को विशेष तिथियों का लक्ष्य रखना चाहिये मुनिमहाराज अतिथि हैं, गृहस्थ सतिथि हैं।

इस पुस्तकाध्ययन से आप को कैसा ज्ञान लाभ हुआ ?। इसका अनुभव तो आप ही करेंगे स्वयं आत्माही रत्नत्रयमय है। पुस्तक तो बाह्य निमित्तमात्र है। इस निमित्त के बिना ज्ञानघन रसास्वाद तो लेखक महोदय को प्राप्त हुआ ही होगा। मैं पिताजी की प्रकृति को जानता हूं व सात्त्विक विषयों के आनन्द में लौकिक वार्ता को भूलकर तन्मय हो जाते हैं। अन्य विज्ञाततत्त्व वृद्ध विद्वान् तो प्रथम से ही ज्ञानानन्दित हो चुके होंगे। इन पण्डित जी की ज्ञानाज्ञन्य, ज्ञानहेतु, वाक्यावलि से हम आप सभी लोकातिक्रान्त आनन्द प्राप्त करें ऐसा निवेदन है। पूज्य ताऊजी स्व० पण्डित नरसिंहदास जी के चित्र का ब्लाक उपद्रवोंके कारण नहीं बन सका इसका भृश अनुताप है। काकाजी अपना चित्र नहीं छपाना चाहते थे, कई बार निषेध किया, किन्तु श्री सुशीलादेवी जी के भ्राता लाला बलवन्तप्रसाद जी ने छह सात बार जोर देकर

कहा कि पण्डित जी का चित्र अवश्य छपेगा। तदनुसार काका जी का चित्र लगा दिया है। चित्र तो पौद्गलिक है आप सहजशुद्ध निर्विकल्प, निरञ्जन, सहजानन्द, चिदात्मतत्त्व परिणति कारण पर लक्ष्य पहुचाइयेगा।

२५१) सुशीलारानी दिल्ली—ये स्वर्गीय लाला अयुध्याप्रसाद जी सहारनपुर की बडी पुत्री हैं। सम्वत् १६४४ मे जन्म हुआ सम्वत् १६६० में विवाह हुआ। समाज प्रख्यात रायबहादुर लाला सुलतानसिंह जी रईस देहली की पत्नी हैं। यहा के धनाढ्य प्रसिद्ध धार्मिक लाला सुमतिप्रसाद जी, बलवन्तप्रसाद जी, शातिप्रसाद जी, कातिप्रसाद जी की बड़ी बहिन हैं। तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ी हैं। धर्म मे रुचि है। दर्शन, पूजन, व्रत, नियम करती हैं। अष्टमी चौदश को विशेष व्रत रखती हैं, शिक्षित हैं। दैवपरिपाक अटल है, 'यमस्य करुणा नास्ति'। सम्वत् १६८०मे इनको वज्रप्रहारवत् पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। तब से विशेष रूप से परोपकार करने में मनोयोग रखती हैं। अनेक सभा सुसाइटियों की सदस्या हैं। प्रैसीडैंण्ट देहली वूमैंस लीग (President Delhi womens league) प्रैसीडैंण्ट मैनेजिंग कमैटी इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल (President maneging Committee Indraprastha girls School) अन्य भी बहुत दान देती हैं। इनके छोटेभाई लाला बलवन्तप्रसाद जी यहा बडे धर्मात्मा सज्जन हैं, विद्वानों के स्नेहानुगामी हैं। जिन-पूजन जाप और ध्यान मे दत्तावधान हैं। स्वभाव से मृदु हैं, सर्वदा

को सचित्त अग्निमें डालते हैं। कोई कोई घृतदीपक या कपूर-दीपक भी चढ़ाते हैं, दक्षिण देशमें इससे भी अधिक सचित्त द्रव्य चढ़ाये जाते हैं। यों हम पाक्षिक के कोई पापकी प्रतिमा की क्रिया हो रही है। कोई पहिली प्रतिमा की भी नहीं। हां अभ्यास रूप जो हो जाय करना ही है। मन होता तो करना था। आप अष्टमी, चौदस, अष्टान्हिका, दशलक्षण, महीने की आदि तिथि, पर्व का आद्य-दिवस, स्वयंमनिधि आदि तिथियां में अधिक धर्म सेवन करो। श्रावक को विशेष तिथियों का लक्ष्य रखना चाहिये मुनिमहाराज अतिथि हैं, गृहस्थ सतिथि हैं।

इस पुस्तकाध्ययन से आप को कैसा ज्ञान लाभ हुआ ?। इसका अनुभव तो आप ही करेंगे स्वयं आत्माही रत्नत्रयमय है। पुस्तक तो बाह्य निमित्तमात्र है। इस निमित्त के बिना ज्ञानघन रसास्वाद तो लेखक महोदय को प्राप्त हुआ ही होगा। मैं पिताजी की प्रकृति को जानता हूं व तात्त्विक विषयों के आनन्द में लौकिक वार्ता को भूलकर तन्मय ही जाते हैं। अन्य विज्ञतत्त्व वृद्ध विद्वान तो प्रथम से ही ज्ञानानन्दित हो चुके होंगे। इन पण्डित जी की ज्ञानजन्य, ज्ञानहेतु, वाक्यावलि से हम आप सभी लोकातिक्रान्त आनन्द प्राप्त करें ऐसा निवेदन है। पूज्य ताऊजी स्व० पण्डित नरसिंहदास जी के चित्र का ब्लाक उपद्रवोंके कारण नहीं बन सका इसका भृश अनुताप है। काकाजी अपना चित्र नहीं छपाना चाहते थे, कई बार निषेध किया, किन्तु श्री सुशीलादेवी जी के भ्राता लाला बलवन्तप्रसाद जी ने छह सात बार जोर देकर

कहा कि पण्डित जी का चित्र अवश्य छपेगा। तदनुसार काका जी का चित्र लगा दिया है। चित्र तो पौद्गलिक है आप सहजशुद्ध निर्विकल्प, निरञ्जन, सहजानन्द, चिदात्मतत्त्व परिणति कारणों पर लक्ष्य पहुचाइयेगा।

२५१) सुशीलारानी दिल्ली—ये स्वर्गीय लाला अयुध्याप्रसाद जी सहारनपुर की बडी पुत्री हैं। सम्वत् १९४४ मे जन्म हुआ सम्वत् १९६० में विवाह हुआ। समान प्रख्यात रायबहादुर लाला सुलतानसिंह जी रईस देहली की पत्नी हैं। यहा के धनाढ्य प्रसिद्ध धार्मिक लाला सुमतिप्रसाद जी, बलवन्तप्रसाद जी, शातिप्रसाद जी, कातिप्रसाद जी की बड़ी बहिन हैं। तत्त्वार्थसूत्र आदि पढ़ी हैं। धर्म मे रुचि है। दर्शन, पूजन, व्रत, नियम करती हैं। अष्टमी चौदश को विशेष व्रत रखती हैं, शिक्षित हैं। दैवपरिपाक अटल है, 'यमस्य करुणा नास्ति'। सम्वत् १९८७ मे इनको वज्रप्रहारवत् पति-वियोग का दुःख सहना पड़ा। तब से विशेष रूप से परोपकार करने में मनोयोग रखती हैं। अनेक सभा सुसाइटियों की सदस्या हैं। प्रेसीडेण्ट देहली वूमेंस लीग (President Delhi womens league) प्रेसीडेण्ट मैनेजिंग कमेटी इन्द्रप्रस्थ गर्ल्स स्कूल (President maneging Committee Indraprastha girls School) अब भी बहुत दान देती हैं। इनके छोटेभाई लाला बलवन्तप्रसाद जी यहा बड़े धर्मात्मा सज्जन हैं, विद्वानों के स्नेहानुगामी हैं। जिन-पूजन जाप और ध्यान मे दत्तावधान हैं।

शुद्ध भोजन करते हैं, अनेक व्रत पालते हैं। शास्त्र सुनने का भारी चाव है।

१००) गुणमाला देवी—ये यहां के प्राचीन श्रोता स्वर्गीय लाला निहालचन्द्र जी की पुत्री हैं। लाला सुमतिप्रसादजी की गृहिणी हैं। यहां की कन्यापाठशाला की संस्थापिकाओं में से एक हैं। उसकी चिर-मन्त्रिणी रहीं। जिन-पूजन का अनुराग है। व्रत नियमों को पालती हैं। स्वाध्याय अच्छा है। स्त्रियों में उपदेश करती हैं। विनय, लज्जा, आदर विद्वानों में श्रद्धा आदि गुण हैं।

१००) लाला समुन्दरलाल जी—यहां के प्रसिद्ध श्रोता, चर्चा-प्रेमी हैं, कषायें मन्द हैं। जाप, जिन-भक्ति, ध्यान, तत्त्व-चर्चा में विशेष अनुराग है, विद्वद्भक्ति है। गृहभार को महेन्द्र लाल पुत्र सम्भालते हैं। दम्पती—धर्म सेवन करते हैं, अवस्था ६२ वर्ष है। कतिपय यात्रायें की हैं।

१२५) श्रीकान्तादेवी—ये मेरी मान्य माता हैं। धर्मपालन में भारी रुचि है। भोजन-शुद्धि, अतिथि सत्कार पर पूरा लक्ष्य रखती हैं। पूज्य पिता जी (पं० माणिकचन्द्र जी) कई वार कठोर रोगाक्रान्त हो गये तो इन्होंने दिन रात के कष्टों को अणुमात्र नहीं गिना, प्रकाण्ड सेवा करके अच्छा कर लिया। सर्व घर को निराकुल अनुपम स्नेह-पात्र बनाये रखती हैं। कुटुम्ब रिश्तेदारों में भारी प्रतिष्ठा है, गृह-लक्ष्मी हैं। कई वार शिखरजी महाराज की यात्रायें की हैं, जैनबद्री मूलबद्री, गिरनार जी, सोनागिर, बड़वानी

गनपन्था, पानागिरि, पावागढ, पावापुर की भी यन्नायें की हैं। अनोद्यापन किये हैं। मातृत्व भरा हुआ है। लड़के, बहुयें नाती सब प्रतिष्ठा करते हैं। सत्तर कुटुम्बिजन इनकी आज्ञा मानते हैं। भतीजे, भतीज बहुयें, नाती कुटुम्बी इनकी आज्ञाको शिरसा मान्य करते हैं। इनके दो जेठ विद्यमान हैं, सभी जेठों ने बहुमान रक्खा इनने भी सासू जेठ, ससुर की अधिक परिचर्या की।

५१) मामचन्द जी सर्राफ, ये युवक होकर धर्म-क्रियाया को करने मे उत्साही हैं। प्राचीन आम्नाय के पोषक हैं ठोस विद्वान या त्यागियों में भक्ति रखते हैं इनके पिता जी लाला महावीर प्रसाद जी सज्जन हैं।

इस पुस्तक की प्रेस-कापी लिखाई, हजार प्रतिया छपाई, १६ रिम कागज, प्रेषण, बाइंडिंग आदि में आठ सौ आठ ८०८) रुपये व्यय हुये हैं प्रत्येक वस्तु महर्घ्य हो गयी है।

इस पावन कार्यमें निम्नलिखित श्रावक, श्राविकाओं ने स्व-योग्य बहुभाग सहायता प्रदान की है उनका समयोचित दान श्लाघनीय है।

आयव्ययौ

२५१) श्री सुशीलादेवी — ६७) पुस्तक की रफ फेयर को
१००) गुणमाला देवी — कापी कराई लेखकको दिये
१००) लाला समुन्दरलाल जी ६१५) १० अजितकुमारनी ...

५१) भाई मामचन्द जी
१२५) पूज्य मेरी माताजी
६२७)

अकलङ्क प्रेस सहारनपुर को १००० प्रति छपाई १६ रिम कागज बाइंडिंग आदि।
६४) प्रतिया ४५० बाहर भेजी जावेंगी प्रति पोस्ट =)
२३) सवासौ प्रतिया रजिष्टर्ड भेजी जावेंगी प्रति ≡)
६) स्फुट परितोष
८०८) कुल खर्च

स्याद्वादोन्नतवर्द्धमानहिमवत्पद्मागतोनि सृता
स्वान्यज्ञप्तिधृताजटाक्तजिन्भृद्द्वीपागनिर्ह्रौतमात् ।
सन्तप्तात्महितार्पकुण्डवदुमास्वाम्याननाद् गोदिता,
निर्देशादिकणान्विकीर्य जिनवाग्गंगा पुनात्वाशु नः ॥
(श्री श्लोकवार्त्तिक हिन्दी टीका)

भवदीय —
जयचन्द्र जैन कौन्दय शास्त्री
न्यायतीर्थ

पूर्वायातिरिक्त

५०) बाबू कस्तूरचन्दजी जैन—ये होनहार युवक हैं। इनके पिता लाला रुड़ामलजी डेरे सामयाने वाले धर्मात्मा हैं। इन्हों ने कतिपय यात्रायें की हैं। एक बार स्थानीय रथोत्सव भी बड़े ठाठ से कराया। इनके पिता स्वर्गीय लाला नारायणदास जी भव्य थे।

निवेदन

नवीन टाईपके होते हुये भी ओकारकी मात्रा कम-जोर होनेके कारण छपते समय दबकर अनेक स्थानोंपर आकारकी मात्रावत् छपती रही, पाठकवृन्द ! ख्याल करें।